सुलभ साहित्य माला संख्या—१९

रहिमन-विनोद

सम्पादक

श्रीयुत पं०, अयोध्याप्रसाद शर्मा, 'विशारद'

प्रकाशक

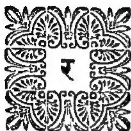
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

प्रथम संस्करण २०००

सं० १९८४ वि०

मूल्य ॥)
सजिल्द का १)

निवेदन


हीम कवि की कविता यद्यपि हिन्दी में अभी तक बहुत थोडी प्राप्त हुई है, परन्तु वह हिन्दी के पुराने कवियों में एक विशेष महत्व का स्थान रखती है। क्योंकि हिन्दी के पुराने मुसल्मान कवियों में रहीम के दोहों का हिन्दी भाषी जनता के अन्दर जितना अधिक प्रचार है, उतना शायद अन्य किसी मुसल्मान कवि की कविता का प्रचार नहीं है। पढ़े लिखे लोगों की बात तो जाने दीजिए—देहातों में, झोपड़ियों के रहनेवाले, देहाती निरक्षर गवाँर भी रहीम के दोहों से परिचित हैं, और गोस्वामी तुलसीदास जी के दोहे-चोपाइयों तथा गिरिधर कविरायजी की कुंडलियों की तरह रहीम के दोहे भी वे अपनी प्रति दिन की मामूली बातों में दृष्टान्त के तौर पर कह दिया करते हैं। रहीम की कविता पढ़ने से ही मालूम हो जाता है कि उन्होंने अपने को पूर्णतया हिन्दू-भावों में मिला या था। हिन्दू धर्म, हिन्दू-समाज, हिन्दू-सभ्यता को पूर्णतया उन्होंने अपने अङ्गीकृत कर लिया था। यदि ऐसा उन्होंने न किया होता, तो उनके हृदय से ऐसी हिन्दू-स्वभावोक्तियाँ कैसे निकल सकती थीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ने ऐसे भगवद्भक्त मुसल्मान कवियों को लक्ष्य कर के ही कहा है कि "इन एक एक हरिजनन पै कोटिन हिन्दू वारिये", और यह बिल्कुल सच है। क्योंकि मुसल्मान धर्म का पालन करते हुए भी यदि कोई मुसल्मान हिन्दी भाषा, हिन्दू-मन्दिरों, हिन्दू-देवी-देवताओं, हिन्दू-सभ्यता और हिन्दू-भावों में भी अपने को तल्लीन कर सकता है—इन सब को अपने ही धार्मिक भावों—बल्कि उनसे भी अधिक—आदर देता है, तो वह हिन्दू

जाति के लिए वन्दनीय "साधु" है। ऐसे मुसल्मान साधु कवि की स्वभावोक्तियाँ क्यों न हिन्दू हृदयों के अन्दर अपना घर करेंगी!

अब्दुलरहीम खानखाना मुसल्मानी राजत्वकाल में अकबरी दरबार के एक बड़े राज्याधिकारी थे, परन्तु मैं उनके लिए "साधु" कहता हूँ, क्योंकि वे आजकल के राज्याधिकारियों की तरह "अयं निजः परोवेति" की भेदनीति के पक्षपाती न थे, किन्तु वे "वसुधैव कुटुम्बकम्" का आचरण करनेवाले उदारचरित पुरुष थे, और ऐसे पुरुष राज्यशासक हों, और चाहे जङ्गल में रहकर तपस्या करनेवाले हों—वे मुसल्मान हों, हिन्दू हों, अथवा और कोई तीसरे धर्म या समाज के हों—हिन्दू लोग उनको साधु ही कहकर अपनाएँगे। यही हिन्दूधर्म की व्यापक विशेषता है, जिसने खानखाना को मुग्ध कर लिया था।

उपर्युक्त कारण से ही "रहिमन विनोद" को प्रकाशित करते हुए आज हमको अत्यन्त हर्ष हो रहा है। रहीम कवि की कविता अन्यत्र भी प्रकाशित हुई है। परन्तु "हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन" इसको क्यों प्रकाशित कर रहा है, इसका कारण इस पुस्तक के सम्पादक प० अयोध्याप्रसादजी शर्मा के "वक्तव्य" से पाठकों को विदित हो जायगा। वास्तव में शर्माजी ने इस "विनोद" को बड़ी योग्यता के साथ सम्पादित किया है, और रहीम की कविता के विद्यार्थियों तथा परीक्षार्थियों के लिए इसमें ऐसी ऐसी सुविधाएँ कर दी हैं, जो अन्य पुस्तकों में बहुत कम पाई जाती हैं। पूर्व प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त अपनी कुशाग्रबुद्धि और अन्वेषण-कौशल से भी पंडित अयोध्याप्रसादजी विशारद ने इसमें बहुत कुछ काम लिया है। अतएव विश्वास है कि रहीमकवि की कविताओं का यह संग्रह विद्यार्थियों तथा सर्वसाधारण कविता प्रेमियों के लिए विशेष उपयोगी और विनोद वर्द्धक होगा।

लक्ष्मीधर वाजपेयी

साहित्य मंत्री

वक्तव्य



हित्यक्षेत्र अनुदिन वृद्धि करता जा रहा है। काशी-नागरी प्रचारिणी-सभा के हस्तलिखित ग्रंथो के खोज-कार्य ने साहित्य-संसार में हलचल सी मचा रक्खी है। ऐसी ऐसी बातें प्रकाश में आरही हैं जिनसे साहित्य का इतिहास लिखने में बड़ी भारी सहायता प्राप्त होगी। इस कार्य के प्रभाव ही से हिन्दी हितैषियो की अभिरुचि अनुदिन साहित्य-क्षेत्र को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने की ओर झुकती जा रही है ओर उसी के फल-स्वरूप साहित्य के प्रत्येक अङ्ग पर ग्रंथ सम्पादित हो होकर धड़ाधड़ निकल रहे हैं। परन्तु यह निश्चित है कि जो ग्रंथ पूर्ण विवेक व विचार के साथ सम्पादित होकर इस क्षेत्र में आवेंगे वही चिरस्थायी होंगे और साहित्य के मणि-मुकुट में स्थान पायेंगे। बाजारू ढंग से आये हुए ग्रंथ "ज्यों 'रहीम' भादों निसा, चमकि जात खद्योत" की तरह भविष्य के गर्भ में अन्तर्लीन हो जायँगे। इसी विचार को सामने रखता हुआ आज मैं अपने पाठकों के सामने अब्दुलरहीमखाँ खानखाना की प्राप्य कविता लेकर उपस्थित हो रहा हूँ। कवि के जीवन-चरित्र से पाठकों को उसकी सम्पूर्ण स्थिति का ज्ञान हो जायगा। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्य्याप्त है कि जिस प्रकार कवि अपनी बुद्धिमत्ता से अकबर का महामंत्री बनगया और अपनी वीरता से सम्पूर्ण दक्षिण भारत में धाक जमा गया उसी प्रकार वह अपनी साहित्य-विद्वता की प्रतिभा से साहित्य क्षेत्र को भी देदीप्यमान कर गया है। कवि के चुटीले दोहे, जो किसी एक ही विषय पर नहीं, किन्तु भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, शृङ्गार, नीति, प्रेम, दान और स्वाभिमान आदि भिन्न भिन्न विषयो

पर कहे गये हैं, प्रसाद गुणालंकृत, बड़े ही मर्मस्पर्शी और चमत्कार-पूर्ण हैं, और उनको शिक्षित और अशिक्षित सभी अपनाये हुये हैं। ऐसे दोहों की संख्या यद्यपि ७०० सुनी जाती है, परन्तु अब तक केवल २६९ ही प्राप्य हैं।

रहीम की कविता पर अब तक जो ग्रंथ निकल चुके हैं वे ये हैं —

१—रहिमन शतक—प० सूर्यनारायण दीक्षित द्वारा सम्पादित

२—रहीम रत्नाकर—प० उमरावसिंह त्रिपाठी द्वारा सम्पादित

३—रहिमन विलास—प० राधाकृष्ण द्वारा रचित रहीम के दोहों पर कुण्डलियाँ

४—रहिमन शतक—प० नवनीत चतुर्वेदी द्वारा रचित रहीम के दोहों पर कुण्डलियाँ

५—रहिमन के दोहे*—श्री वियोगी हरि द्वारा सम्पादित

६—रहीम—प० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित

७—रहिमन विलास—ब्रा० व्रजरत्नदास द्वारा सम्पादित

उपर्युक्त पुस्तकों में नं० ६ और ७ को छोड़कर शेष में केवल दोहे ही हैं। सबसे बड़ा संग्रह 'रहिमन विलास' है। साहित्य क्षेत्र में इस समय सं० ५, ६ और ७ के ही ग्रंथ चल रहे हैं। इनमें टीका-टिप्पणी भी की गई है।

इन संग्रहों के होते हुए भी मेरा विचार एक नये संग्रह के सम्पादन करने का क्यों हुआ उसके उत्तर में मैं पाठकों से यही कहूँगा कि अब तक रहीम के जो संग्रह निकले हैं उनमें पाठ बहुत गड़बड़ है। शब्द रखने में इस बात का किंचिन्मात्र विचार नहीं किया गया है कि उनका कुछ अर्थ हो सकता है या नहीं, शाब्दिक अर्थ और टिप्पणियाँ सरल दोहों की ही अधिक दी गई हैं। अन्यों को शिथिल श्रेणी में डाल कर टाल

* अशुद्ध होने के कारण यह संस्करण नष्ट कर दिया गया। कई वर्ष से अप्राप्य है। सा० मं०।

मट्ठल की गई है। शाब्दिक अर्थ और टिप्पणियाँ भी ऐसी दी गई हैं जिनसे बहुत जगह अर्थ का अनर्थ हो गया है। मैं प्रत्येक पुस्तक से कुछ ऐसे ही उदाहरण उद्धृत करता हूँ जिनसे पाठक स्वय अनुमान लगा सकेंगे।

१—रहीम—सम्पादक प० रामनरेश त्रिपाठी—इसमें २४७ दोहे और सोरठे हैं। परन्तु कुल ४२ शब्दों के अर्थ दिये गये हैं। इनमें भी दशांश शब्दार्थ अशुद्ध है। नमूना देखिये —

"दाग दिखावत आपु तन, सही होत असवार"

इसमें 'सही शब्द का अर्थ निशानी या दस्तखत है, परन्तु सम्पादक ने अर्थ किया है 'साईस'।

ब—"माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल आर"

इसमें 'टेसुआ' का मतलब 'टेसूराजा' से है जिनकी मूरत बनाकर लड़के क्वार की पूर्णिमा को विवाह कराते हैं, परन्तु सम्पादक ने इसका अर्थ 'टेसू या पलास' दिया है, जो यहाँ युक्तिसंगत नहीं है। इत्यादि।

इस पुस्तक के सम्पादन में भी पाठ की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

२—रहिमन विलास—सम्पादक बाबू ब्रजरत्नदास। इसमें २६५ दोहे और सोरठे हैं। शब्दार्थ व टिप्पणी भी अच्छी संख्या में दी गई है। कुछ नमूने देखिये —

अ—"अनुचित वचन न मानिये, जदपि गुराइसि गाढ़ि"

इसमें 'गुराइसि' शब्द का अर्थ 'गुरुजनों की आज्ञा' है, पर सम्पादक ने इसे गुराइस शब्द मान इस 'गुराइस गाढ़ि' का अर्थ किया है 'गुरु के ऐसा गाढ़ा'।

ब—"फल स्यामा के उर लगे, फूल स्याम उर माहिं"

इसमें 'फूल' शब्द का अर्थ है 'आनन्द'। सम्पादक ने 'कमल की माला' अर्थ दिया है, जिससे दोहे का सौष्ठव और कवि का भाव ही नष्ट हो गया है।

स—"बड़े बड़े बैठे लसौं, पथ रथ-कूवर छाँह"

इसमें 'रथ कूबर' का अर्थ 'रथ में बैठने का स्थान' है, क्योंकि रथ में बैठने की जगह पर कुबड़ी छत से छाया की जाती है। सम्पादक ने इसका अर्थ दिया है—'रथ का वह भाग जिसपर जुआँ बाँधा जाता है'—'हरसा', 'कूबड़ा', जो युक्तिसगत नहीं है।

द—"हम तन ढारत ढेकुली, सींचत आपन खेत"

इसम 'ढेकुली' शब्द का अर्थ दिया है—'गड़ारी, जिस पर से रस्सी जाती जाती है'। यह युक्ति-संगत नहीं है। इसी प्रकार दोहा न० १९, २५,५६,८५,१०८,१२१,१४९,१६९ और २४७ आदि पर भी टिप्पणी व शब्दार्थ विचार पूर्ण नहीं दिये गये हैं।

दोहो के पाठो की तरफ इसमें भी ध्यान नहीं दिया गया है। इसमें भी दोहा नं० ६६,१०३ एक ही हैं, परन्तु थोड़े से शाब्दिक परिवर्तन के साथ दो माने गये हैं।

अब यदि दोहा-संख्या पर विचार किया जाय तो यह निश्चित है कि रहीम ने अपने दोहों में 'रहीम' या 'रहिमन' उपनाम अवश्य रक्खा है जो उनके दोहों के लिये कसौटी का काम देता है। यद्यपि मैंने भी इस संग्रह में ऐसे दोहे दिये हैं जिनमें रहीम की छाप नहीं है, पर जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि वे रहीम के नहीं, अमुक कवि के हैं, तभी तक वे रहीम की सम्पत्ति हैं। यही सर्व-सम्मति भी है। परन्तु 'रहिमन विलास' में दोहा न० २,४०,८८,९८ और १४४ ऐसे हैं जो रहीम की सम्पत्ति में सम्मिलित नहीं किये जा सकते, क्योंकि न० २ और १४४ को यद्यपि सम्पादक ने दो श्लोकों के आधार पर बना हुआ बताया है जो रहीम के ही लिखे हुए हैं, परन्तु इनमें 'रहीम' की छाप नहीं है, यदि कवि अपने लिखे श्लोकों के आधार पर दोहे बनाता तो अपनी छाप अवश्य

खता। रहीम की छाप का न होना ही इनको अन्य कवि के बनाये हुए
सिद्ध करता है।

नं० ४० और ९८ में यद्यपि रहीम की छाप है, पर पं० रामनरेश त्रिपाठी
का यह कथन

" × × जिनमें रहीम का नाम नहीं है वे दोहे तो संशयास्पद
हैं हीं, किन्तु कई नामवाले दोहे भी वृन्द, तुलसी और अन्य कवियों
के हैं। इससे जान पड़ता है कि रहीम के दोहों का आदर इतना
बढ़ चला था कि अन्य कवियों के दोहे भी उनके नाम से प्रसिद्ध कर
दिये गये।"

यथार्थ में सत्य है। इनमें ४०, ९८ नम्बर के दोहे वृन्द कवि के
। देखो वृन्द-सतसई भारतजीवन प्रेस, काशी द्वारा सन् १८९१ की
की, पृष्ठ ३ और ६। नं० ८८ के दोहे में रहीम की छाप भी नहीं है
और न वह रहीम का है। यह दोहा भी वृन्द कवि का ही है। देखो वृन्द
सतसई पृष्ठ २।

मैंने जो इस 'विनोद' में २६८ दोहे दिये हैं उनमें से २६० तो
पहले की सम्पादित पुस्तकों के ही हैं, शेष ८ में से २ लाला भगवानदीन
द्वारा सम्पादित सूक्ति-सरोवर पृष्ठ ४०६ और ४१५ से, १ रामचरित-मानस
की भूमिका पृष्ठ ३० से, जिसके लेखक बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०
और प्रकाशक इंडियन प्रेस, प्रयाग हैं, १, संवत् १८४३ के हस्तलिखित
फुटकर संग्रह से और ३ याज्ञिक-बंधुओं के 'माधुरी' फाल्गुन संवत् १९८१
के लेख से लिये गये हैं। दोहों का पाठ अधिकतर 'रहिमन के दोहे',
'रहीम' या हस्तलिखित फुटकर संग्रह के आधार पर दिया गया है।

रहीम के सम्पूर्ण दोहों को इन चार भागों में विभाजित किया गया है—

१—धर्मगुच्छ—इसमें ईश्वर, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति विषयक सभी
दोहे एकत्रित कर दिये गये हैं, जिनको पढ़कर पाठकों के मुख से सहसा यही

जी ज्योतिषी काशी की कृपा से प्राप्त हुआ है और पाठान्तर प० धनवारीलाल दीक्षित व्याकरण शास्त्री इकनार द्वारा प्राप्त हुआ है। रहीम-काव्य के सम्पादन में भी पाठ की ओर 'रहिमन विलास' के सम्पादक ने किंचिन्मात्र ध्यान नहीं दिया है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसमें मेरा आशय किसी की त्रुटियाँ दिखाना नहीं है। बल्कि रहीम के काव्य से प्रेम होने के कारण जैसा मैंने उसको समझा है उसका केवल दिग्दर्शन-मात्र कराया है। यह तो मैं स्वयं स्वीकार करता हूँ कि रहीम की कविता के भूतपूर्व सम्पादकों के सहारे से ही मैं यह 'विनोद', जैसा कुछ बन पड़ा, उपस्थित कर रहा हूँ। मुझसे भी ऐसी ही भूलें रह जाना सम्भव है, जिनका आगे चलकर कोई महानुभाव स्पष्टीकरण कर डालेंगे। फिर भी साहित्य सेवा के विचार से ही मैं यह 'विनोद' पाठकों के सामने रखता हूँ और आशा करता हूँ कि मेरी अक्षम्य भूलों को भी पाठक सुधारकर 'रहीम-प्रेमियों' का उपकार करेंगे।

मैं उन महानुभावों का परम कृतज्ञ हूँ जिनके द्वारा मुझे नये छन्द मिले हैं, अथवा जिनकी सम्पादित पुस्तकों से मुझे इस संग्रह के सम्पादन में सहायता मिली है। सिवाय इसके श्रीमान् प० रामशरण तिवारी बी० ए० और श्रीमान् मित्रवर प० भागीरथप्रसाद दीक्षित 'विशारद' का भी परम कृतज्ञ हूँ, जिनकी सहायता व प्रोत्साहन से मैं इस पुस्तक को इस रूप में लेकर पाठकों के सामने उपस्थित हो रहा हूँ। अन्त में काव्य-मर्मज्ञ पं० कृष्ण बिहारीमिश्र बी० ए०, एल एल० बी० के प्रति, जिन्होंने बरवैनायिका-भेद को देखकर अपनी सुसम्मति से मेरी अभिलाषा पूर्ण की है, कृतज्ञता प्रकट करता हुआ, मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूँ। ओ३म् शम्।

क्योंटरा-(इटावा)
कार्तिकी पूर्णिमा, १९८२ } अयोध्याप्रसाद शर्म्मा, विशारद

कवि का परिचय

पूर्वज



पने चरित नायक का सविस्तर वर्णन लिखने से पहले मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि प्रथम उनके पूर्वजों का संक्षिप्त परिचय दे दिया जाय ताकि उनका मुगल-वंश से घनिष्ट सम्बन्ध भी प्रकट हो जाय और साथ ही उनकी जीवनी पर प्रकाश डालने में भी सुगमता हो।

वंश-परिचय—मुआसिर-उल-उमरा के लेखक ने कवि की जाति तुर्कमान और वंश का नाम कराकूयलू लिखा है। इससे प्रकट है कि वे तुर्कमान जाति के कराकूयलू नामक घराने में से थे।

पूर्वज परिचय—इनके पूर्वज आजर बायजान में, जो ईरान का एक सूबा है और जिसको अब अरमीनियाँ कहते हैं, रहते थे। संवत् १४३२ में सुल्तानहुसैन इल्कानी ने तुर्कमानों पर चढ़ाई करके ये गढ़ और नगर छीन लिये जो उनके सरदारों के अधीन थे। तत्पश्चात् सुल्तानहुसेन के पुत्र सुल्तान अहमद जलायर ने करामुहम्मद के ५ हजार तुर्कमानों की सहायता से अपने भाई शेखअली को भगाकर बगदाद पर अधिकार जमा लिया और जिसको संवत् १४५० में अमीर तैमूर ने सुल्तान अहमद से छीन लिया। परन्तु जब अमीर तैमूर तूरान की ओर चला गया तो उसने पुनः बगदाद पर अधिकार जमा लिया। इसके पश्चात् १४५६-५७ में अमीर तैमूर ने ईरान वापस आकर बगदाद छीन लिया और सुल्तान अहमद को मय अपने सहायक करायूसुफ तुर्कमान के मिश्र देश को भाग जाना पड़ा, जो

पुन अमीर तैमूर की मृत्यु सुनकर संवत् १४६१ मे ईरान वापस आया। वापस आते ही सुल्तान अहमद ने बगदाद पर और करायूसुफ ने तबरेज पर अपना अपना अधिकार जमा लिया। संवत् १४६७ में सुल्तान अहमद ने तबरेज भी लेना चाहा, पर वह युद्ध में मारा गया और बगदाद पर भी करायूसुफ का ही अधिकार हो गया। इसी समय मे कराकूयलू तुर्कमानो म बादशाही आई और करायूसुफ इस घराने का पहला बादशाह हुआ।

यद्यपि तैमूर के बेटे पोते इमसे आर इसकी सन्तानों मे बराबर झगड़ते ही रहे, परन्तु तो भी तुर्कमानो का राज्य ६५ वर्ष तक उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया और वह संवत् १५२५ में जाकर समाप्त हुआ।

कराकूयलू वंश की शाखाओं में एक शाखा 'बहार लू' भी थी जिसके अमीर अलीशकर बेग को करायूसुफ ने हमदान, देनूर और कुर्दिस्तान के इलाके जागीर में दिये थे आर जो तुर्कमानो का राज्य चले जाने के पीछे तक अलीशकर की विलायत कहलाते रहे।

यही अलीशकर बेग हमारे चरित्र नायक का मूल पुरुष था। कराकूयलू वंश मे बादशाहत चले जाने पर इनके पुत्र ने तैमूर वंशीय सुल्तान अबूसईद के यहाँ नौकरी कर ली, जिसके ज्येष्ठ पुत्र महमूद मिरजा ने इसकी बहिन पशा बेगम से विवाह कर लिया। इस सम्बन्ध से बहारलू-वंश की मुगल-वंश से पूर्ण घनिष्टता हो गई आर इनकी गणना उनके निजके अमीरों में होने लगी।

अलीशकर की संतानो मे पीरअली ही वीर और साहसी था। वह पहले तो हिसार शादमाँ म महमूद मिरजा के पास रहा, पर फिर ईरान चला गया। वहाँ पर समय पाकर निज का राज्य-स्थापन हेतु उद्योग भी किया, पर विफल मनोरथ होने पर खुरासान चला गया आर वहीं मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसका पुत्र यारबेग, जो ईरान म रहता था, संवत् १५५७ में शाह इसमाईल सफवी के अधिकृत हो जाने पर बदख्शाँ चला आया और वहाँ से कुन्दुज आकर अमीर खुसरो के पास रहने लगा। पर

जब सवत् १५६१ म बाबर बादशाह फरगाने को त्यागकर बदख्शाँ आया तो खुसरोशाह ने बदख्शाँ का सूबा उसके अधिकार मे दे दिया। तब से यार बेग भी अपने पुत्र सेफअली समेत बाबर बादशाह की नौकरी करने लगा। बाबर की सेवा में रहते समय ही बदख्शाँ म सेफअली के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम बैरम बेग रक्खा गया जो पीछे से बैरामखाँ खानखाना कहलाया। यही हमारे चरित्र-नायक के पिता थे। इनके जन्म सवत् का निश्चित पता किसी इतिहास म नहीं लगता है और न यही ज्ञात होता है कि यह हुमायूँ बादशाह के पास आकर कब नोकर हुये। केवल इतना ज्ञात है कि बैरम बेग ने बदख्शाँ से बलख जाकर विद्याध्ययन किया और १६ वर्ष की आयु में हुमायूँ बादशाह की सेवा में पहुँचकर नौकरी कर ली, जिसमें बढते बढते प्रधानमत्री के पद तक उन्नति पाई। हाँ, अकबर के उस पत्र के आधार पर, जो इनके विद्रोही होने पर उसने लिखा था कि—" × × × हमको यह भरोसा है कि तुमने अपनी समझ मे इनमें से कोई काम नहीं किया। × × × परन्तु तुम्हीं कहो कि क्या ४० वर्ष तक स्वामिभक्ति से सेवा करने, प्रतिष्ठा से परमपद को पहुँचने और जगत् में कीर्ति पाने के पीछे भी इस शेषावस्था में स्वामिद्रोही बनोगे × × ×।" यह कहा जा सकता है कि विद्रोही होने के समय यह ५६ वर्ष के होगे। इसी आधार पर इनका जन्म सवत् १५६० के लगभग माना जा सकता है।

'खानखाना' की उपाधि के विषय में भी यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता कि वह कब मिली। अलबत्ता इतना ज्ञात है कि 'खाँ' की उपाधि ईरान के बादशाह ने इन्हे सवत् १६०१ मे दी थी जब यह हुमायूँ के साथ वहाँ गये थे। इसी से यह अनुमान किया जा सकता है कि 'खानखाना' की उपाधि हुमायूँ बादशाह के ईरान से आकर कधार, काबुल या हिन्द लेने के पीछे सवत् १६०२ से १६१२ तक किसी वर्ष में मिली होगी।

यह बड़े वीर और साहसी थे। द्वितीय बार हुमायूँ को हिन्द पर विजय इन्हीं के कारण प्राप्त हुई थी। इसके अलावा इन्होंने बहुत से युद्धों में विजय प्राप्त की थी।

पूर्वज-परिचय पढ़ने से पाठकों को यह भली प्रकार विदित हो गया होगा कि रहीम की मुगलों के साथ घनिष्टता कालान्तर से चली आ रही थी। वह इनके समय म और भी दृढ़ हो गई।

जन्म-काल—जब द्वितीय बार हुमायूँ हिन्द में आया तो उसने ईरान के बादशाह तुहमास्प सफवी के कथनानुसार[१] जमींदारों की पुत्रियों से अपने अमीरों के विवाह कराये। आपने भी हिन्द के सब से बड़े जागीरदार हसनखाँ मेवाती के चचेरे भाई जमालखाँ की दो कन्याओं में एक का अपने साथ और दूसरी का बैरामखाँ खानखाना के साथ विवाह किया, जिससे मगसर सुदी १४ सोमवार संवत् १६१३ को पुत्रोत्पन्न हुआ, और जिस का नाम अकबर बादशाह ने 'अब्दुल रहीम' रखवाया।

बाल्यकाल—इनके पिता बैरामखाँ, जो अन्तिम समय में विद्रोही हो गये थे, पकड़कर बादशाह अकबर के सामने लाये गये। पर क्षमा याचना के साथ, मक्का जाने की इच्छा प्रकट करने पर, दयालु अकबर ने इन्हें क्षमा करके हज के लिये जाने की आज्ञा दे दी। इन्होंने सपरिवार मक्के को प्रस्थान किया, पर गुजरात के पट्टननगर में माघ सुदी १५ संवत् १६१७ को मुबारक खाँ नामक पठान ने इन वध कर डाला। बालक रहीम इस

१—शाह ने कहा था कि आपने हिन्दुस्तान के जमींदारों से रिश्तेदारी नहीं की और अजनबी से बने रहे, इसी से आप के पैर नहीं जमे। अब जो पुन बादशाही मिले तो दो काम जरूर करना—एक तो पठानों को व्यापार में लगाना, दूसरे वहाँ के राजाओं और जमींदारों से रिश्तेदारी करना।

समय केवल ४ वर्ष का था। इनकी मृत्यु सूचना जब बादशाह को मिली तो खानखाना की मृत्यु पर बादशाह ने बड़ा शोक प्रकट किया और बालक रहीम को सपरिवार अपने पास बुला लिया, जहाँ पर इनके पढ़ाने लिखाने और सभ्यता सिखाने में किसी प्रकार त्रुटि नहीं होने पाई।

युवाकाल—बड़े होने पर बादशाह ने इन्हें 'मिरजाखाँ' की उपाधि प्रदान की और अपनी धाय माँ की बेटी माहबानू से इनका विवाह कर दिया। इस सम्बन्ध से बाप की तरह इनकी भी शाही घराने से घनिष्ठता बढ़ गई।

अब यह शाही कामों में योग देने योग्य हो गये थे। अतः जब बादशाह ने गुजरात पर चढ़ाई की तब यह भी साथ थे। इस समय बादशाह ने इन्हें पाटन की जागीर प्रदान की। इसी प्रकार इन्होंने गुजरात के कई युद्धों में सहायता दी, जिसके कारण बादशाह ने संवत् १६३३ में इनको गुजरात की सूबेदारी पर नियुक्त किया। इसके पश्चात् यह दो वर्ष तक मेवाड़ प्रान्त में युद्ध करते रहे, इसी समय इनके घर की बेगमें एक बार राजपूतों के हाथ पड़ गईं, पर राणा प्रताप ने बड़े ही आदर के साथ उनको रहीम के पास भेज दिया। तभी से राणाजी पर इनकी बड़ी श्रद्धा हो गई और इसी के प्रत्युपकार में इन्होंने बादशाह से प्रार्थना करके मेवाड़ पर एक बड़ी चढ़ाई रुकवा दी थी। यह सदैव राणा के स्वाभिमान और देशभक्ति की प्रशंसा किया करते थे।

मेवाड़ से वापस आने पर इनके गुणों पर मोहित हो और सब प्रकार से योग्य समझ संवत् १६३७ में इन्हें मीर अर्ज के पद पर नियुक्त किया। इस पद से इनके ऐश्वर्य और सम्पत्ति दोनों की वृद्धि हुई। यह समय इनके भाग्योदय का था, इसीसे यह बड़ी शीघ्रता से उन्नत होते जा रहे थे। मीर अर्ज होने के ८ मास पश्चात् ये अजमेर के सूबेदार बनाये गये और माघ बदी ३ संवत् १६३८ के दरबार में उच्च पद प्रदान किया गया। इस

समय बादशाह इनकी बुद्धिमत्ता पर इतने मोहित हो गये थे कि महत् म महत् पद देते हुये भी किंचित न हिचकिचाते थे। इसीसे बड़े शाहजा सलीम के शिक्षक व संरक्षक का स्थान रिक्त होने पर इनकी ही उस प नियुक्ति की गई। इस महत्सौभाग्य पर इन्होंने बड़ा उत्सव किया, जिसमें स्वयं बादशाह ने आसौज बदी ८ रविवार संवत् १६३९ को इनके घर पर पधारकर इनके मान को बढ़ाया और सम्पूर्ण जनों को आनन्दित किया।

इसके पश्चात् जब बादशाह ने राज्य के सुप्रबंध हेतु शाहजादों में कार्य विभाजित किया तब बड़े शाहजादे सुल्तान सलीम के आप सहायकों में रक्खे गये।

गुजरात का युद्ध—इस समय इनका सौभाग्य-चन्द्र पूर्णरूपेण देदीप्यमान हो रहा था। अत बादशाह ने कार्तिक बदी १ संवत् १६४० को एक बड़ी सेना के साथ, जिसमें ११ अमीरों की भी नोकारी थी, गुज रात विजय करने के लिये पुन भेजा, क्योंकि वहाँ का पहला सुल्तान मुजफ्फर, जिसको बादशाह संवत् १६२९ में हराकर बन्दी बना लाये थे, संवत् १६३५ में बन्दीगृह से भाग गया और गुजरात में जाकर उसने पुन उत्पात आरम्भ कर दिये थे। यह यहाँ से प्रस्थान कर माघ बदी १४ बुधवार संवत् १६४० को पाटन पहुँचे, वहाँ की सेना ने आपका सहर्ष स्वागत किया। यहाँ आपने अपनी सेना को सुचारु रूप से संगठित किया और माघ सुदी १४ गुरुवार संवत् १६४० को सरखेज की ओर अहमदाबाद और नदी के बीच में डेरे डाले और यहीं से व्यूह रचकर युद्ध प्रारम्भ किया। घमासान युद्ध के पीछे इनकी अगूणी सेना और उसके पृष्ठ-रक्षक भाग खड़े हुए, पर तो भी यह ३०० वीर योद्धाओं और हाथियों

उपलक्ष्य में इन्होंने बड़ा उत्सव किया और प्रतिज्ञानुसार सम्पूर्ण धन, जो उस समय उनके पास था, अपने सब साथियों में विभाजित कर दिया।

इसके पश्चात् इन्होंने मुजफ्फर को, जो खंभात की ओर भाग गया था, पीछा करके कई जगह पराजय दी। जब बादशाह को मुजफ्फर पर इनकी विजय की सूचना मिली तो उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और इस विजय के उपलक्ष्य में इन्हें 'खान-खाना' की उपाधि, एक भारी सरोपा और 'पाँच हजारी मनसब' प्रदान किया।

गुजरात विजय के पश्चात् जेठ बदी १० संवत् १६४१ को अहमदाबाद आकर देश प्रबंध में प्रवृत्त हुए और वहाँ विजय के उपलक्ष्य में एक बाग लगवाया और उसका नाम 'फतहबाग' रक्खा जिसको आजकल 'फतहबाडी' कहते हैं।

उसके पश्चात् मुजफ्फर के पुनः सिर उठानेपर भड़ोच विजय की, जामनगर के राजा को अधीन किया और मुजफ्फर को हराया। दरबार का बुलावा आने पर सावन सुदी ३ संवत् १६४२ को अहमदाबाद से प्रस्थान कर भादों बदी ६ संवत् १६४२ को बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए। वहाँ से आश्विन बदी ५ संवत् १६४२ को पुनः गुजरात जाने की आज्ञा पाकर अहमदाबाद को लौटे और मार्ग में सिरोही और जालोर के अधिपतियों को अधीन करते और शिकार खेलते हुए गुजरात जा पहुँचे। इस प्रदेश में शान्ति-स्थापन कर संवत् १६४४ में शाहजादे मुराद के विवाह में सम्मिलित होने के लिए बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए।

विवाह के पश्चात् यह बहुत दिनों तक दरबार में रहे। उस समय बादशाह बहुधा इनको दरबारियों के झगड़ों में पंच बनाते रहे। इसके पश्चात् संवत् १६४६ में जब बादशाह ने कश्मीर को पयान किया तब इनको भी साथ ले गये। कश्मीर से बादशाह काबुल गये और वहाँ से

हिन्द को लौटे। हिन्द की वापसी के समय योरत पडाव पर खानखाना ने 'वाकआत बाबरी' का फारसी-अनुवाद बादशाह की सेवा में अर्पित किया, जो पहले तुर्की भाषा में था। इस पर बादशाह ने इनको बहुत धन्यवाद दिया और इनकी इस प्रकार की कार्य दक्षता और नि स्वार्थता से प्रसन्न हो इन्हें पौष बदी १३ सवत् १६४६ को महामत्री के पद पर नियुक्त किया, जो टोडरमल की मृत्यु हो जाने के कारण रिक्त हो गया था। यह पद मुगल-साम्राज्य में सर्वोपरि माना जाता था। महामत्री बादशाह का प्रतिनिधि समझा जाता था। इनके पिता भी इस पद पर रह चुके थे।

इसके पश्चात् गुजरात मिरजा अजीज कोका को जागीर म दिया गया और जौनपुर इनको देकर कधार विजय करने के लिये भेजा गया। इन्होंने प्रस्थान कर मुल्तानवाला मार्ग पकडा जो पहले ही से इनकी जागीर मे था। इन्होने मार्ग ही से बादशाह से प्रार्थना की कि मुझे सिंध विजय की आज्ञा दी जाय। बादशाह ने इनकी प्रार्थना स्वीकार कर कधार विजय के लिए शाहजादे दानियाल को भेज दिया। अत खानखाना ने मुल्तान पहुँच बुद्धिमत्ता से काम ले सेवनी को ले लिया, जो सिध देश का द्वार कहलाता था। सेवनी-दुर्ग की विजय सुन मिरजा जानी, जो सिध का अमीर था, युद्ध के लिये आया, परन्तु घमासान युद्ध के पश्चात् पराजित हुआ, उससे मेविस्तान का जिला, सेहवान दुर्ग, २० जङ्गी नाव और अपनी बेटी मिरजा एरच को देना स्वीकार करने पर इन्होंने संधि करली और वर्षा ऋतु के अन्त मे बादशाह की सेवा मे उपस्थित होने का वचन देने पर खानखाना ने घेरा उठा लिया।

सवत् १६४९ में मिरजाजानी को बादशाह की सेवा में उपस्थित करने के पश्चात् इन्हें पुन दक्षिण की अशान्ति मिटाने हेतु भेजा गया। वहाँ शाहजादा-मुराद और इनमें कुछ अनबन हो गई, परन्तु यह ■ पुल दक्षिण ही में रहकर कार्य करते रहे,—यहाँ तक कि कार्तिक सुदी १४

सवत् १६६२ को अकबर बादशाह का देहान्त भी हो गया और जहाँगीर राज्य सिंहासन पर सुशोभित हो गये। पर दक्षिण मे जब तक शान्ति न हुई, यह नये बादशाह की सेवा मे भी उपस्थित नहीं हुए। दो-तीन वर्ष पश्चात् जब कुछ शान्ति हुई, तब यह भादो बदी १२ संवत् १६६५ को बादशाह के चरणों में उपस्थित हुए और लगभग ३ लाख रुपये के मोल के हीरा-माणिक उन्हें भेंट किये।

वृद्धावस्था—इस समय रहीम ५० से ऊपर पहुँच चुके थे, परन्तु उनमे उत्साह नवयुवकों से भी बढ़कर था। अत कुछ दिन दरबार में रह दक्षिण विजय की प्रतिज्ञाकर यह पुन दक्षिण को रवाना हुए। इनके जाने के पश्चात् आवश्यकता होने पर बादशाह ने शाहजादे परवेज को भी दक्षिण के लिए रवाना किया, पर बादशाहीदल की फूट के कारण कुछ लाभ न हुआ और लोगों के शिकायत करने पर खानखाना को वापस बुलाकर दक्षिण मे खानखाना की तैनाती की गई, जहाँ पर कुछ फल न निकला। अत अन्त में खानखाना को '६ हजारी मसब' उनके बड़े पुत्र शाहनवाज खाँ को '३ हजारी मसब', घोड़े, हाथी आदि देकर पुन दक्षिण भेजा। शाहनवाज खाँ ने कठिन लड़ाई के पश्चात् मलिक अम्बर को पूर्ण रीति से पराजित कर दिया।

अब सवत् १६७३ में बादशाह ने परवेज को दक्षिण से हटाकर खुर्रम को उसकी जगह तैनात किया और स्वय माडू आया। खुर्रम ने दक्षिण में आशातीत सफलता प्राप्त की, अर्थात् बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तानों और मलिक अम्बर से वश्यता स्वीकार करा, खानखाना को खानदेश, बरार और अहमदनगर का सूबेदार नियुक्तकर और शाहनवाज खाँ को विजित प्रान्तों का अधिकार दे, स्वय बादशाह की सेवा मे माडू जा उपस्थित हुआ, जहा उसका बड़ा स्वागत हुआ। इस समय बादशाह की आज्ञानुसार शाहजहाँ (खुर्रम) ने शाहनवाज खाँ की पुत्री से विवाह कर लिया। संवत् १६७५ मे खानखाना के दरबार में आने पर उन्हें 'सात हजारी मसब' देकर पुन सूबेदारी पर वापस भेजा गया। इसके दूसरे ही

वर्ष इनके बड़े पुत्र की, अत्यन्त मद्यप होने के कारण, मृत्यु हो गई, जिससे इनको ही नहीं, बादशाह को भी बड़ा शोक हुआ। इसके १ साल पश्चात् ही इनके दूसरे पुत्र रहमानदाद की भी मृत्यु हो गई। इससे इनको और भी सदमा पहुँचा। इनके असमय का श्रीगणेश यहीं से होता है।

इन्हीं दिनों खुर्रम ने पिता (बादशाह) के विरुद्ध विद्रोह किया और दक्षिण में होने के कारण खानखाना को भी इसका साथ देना पड़ा। इसी समय पर बादशाह ने इनको नमकहराम लिखा है।

अब खानखाना के भाग्य चक्र ने पलटा खाया और बजाय उन्नत होने के उन्हें अवनत पथ की ओर अग्रसर किया। इन दिनों यहाँ तक नौबत पहुँच गई थी कि यह "बेपेंदी के लोटे" की तरह कभी इधर (खुर्रम की ओर) और कभी उधर (बादशाह की ओर) लुढ़कते थे। इसी से पहले इनको खुर्रम और पीछे से महाबतखाँ की कैद तक में रहना पड़ा था। इस समय इनके सम्पूर्ण मरातिब के साथ जागीर भी छीन ली गई थी, परन्तु जब बाप-बेटे में सुलह हो गई तब बादशाह ने इन्हें महाबतखाँ की कैद से छुड़ाकर अपने पास बुला लिया और यह समझाकर कि—"अब तक जो कुछ हुआ, दैव संयोग से हुआ—न कुछ हमारे अख्तियार की बात थी, और न तुम्हारे। तुम इसका अधिक शोक-सन्ताप न करो।"—पुनः मनसब और पदवी प्रदान की। इस पर इस वृद्ध सरदार ने तुरन्त यह शैर पढ़ा था—

"मरा लुत्फे जहाँगीरी जे ताईद दाते रब्बानी।
दोबार जिन्दगी दाद दोबार खानखानानी।"

इसका भाव यह है कि ईश्वरीय सहायता से, जहाँगीर की कृपा ने, मुझे दूसरी बार जीवन और खानखाना की उपाधि दी।

इनको खानखाना की उपाधि देकर और कन्नौज का अधिपति बनाकर भेजा गया था, पर महाबतखाँ के विद्रोह करने पर इन्हें मार्ग से ही वापस आना पड़ा। जब यह लाहोर से सेना लेकर महाबतखाँ पर

चले तब मार्ग में बीमार पड गये, अर्थात् जब दोबारा इनका भाग्योदय हुआ तब इनकी उम्र ने साथ न दिया और दिल्ली पहुँचकर अधिक बीमार होने के कारण वहीं ठहर गये और सन् १०३६ हिजरी के पिछले महीनों में सर्वदा को शान्त हो गये। इस समय इनकी आयु ७२ वर्ष के लगभग थी।

यह कितने दु ख की बात है कि खानखाना की मृत्यु तिथि का निश्चित पता अब तक नहीं लगा है! स्वर्गीय मु शी देवीप्रसादजी खानखाना नाम (दूसरा भाग) पृष्ठ ९७ पर लिखते हैं —

"हर एक सन् हिजरी के पिछले महीने जमादिउलसानी या रजब माने जा सकते हैं। इस हिसाब से खानखाना का देहान्त फागुन संवत् १६८३ या चैत्र संवत् १६८४ में हुआ होगा। अफसोस है कि तुजुक जहाँगीरी में खानखाना के मरने की मिती नहीं लिखी है।"

इनके चार पुत्रों म दो पुत्रों की मृत्यु का वृत्तान्त दिया जा चुका है। तीसरा पुत्र दराब खाँ, परवेज और महाबतखाँ के हाथ पकड़ा जाकर मारा गया और उसका सिर कपड़े म लपेटकर जहाँगीर की इच्छानुसार खानखाना के पास बन्दीगृह में तरबूज के नाम पर भेंट-स्वरूप भेजा गया, जिसे देखकर वृद्ध ने केवल इतना कहा कि 'तरबूज शहीदी' है। दाराबखाँ और शाहनवाज खाँ के पुत्र पहले ही मारे जा चुके थे। चौथा दासी-पुत्र था, जो यौवनावस्था ही में मृत्यु को प्राप्त हो गया था।

ऊपर जो कुछ वर्णन किया गया है उससे प्रकट है कि यह बड़े वीर और बुद्धिमान थे—अपने बुद्धि-बल से महामंत्री तक के पद को पहुँच गये थे। वीर होने के साथ ही साथ यह साहित्य के कुछ कम प्रेमी न थे। इनकी साहित्यिक विद्वत्ता वीरता के साथ 'सोने म सुगंध' की कहावत चरितार्थ कर रही है।

कवि होने के साथ ही साथ यह कवियों के आश्रयदाता भी थे। अबुल्फजल ने बादशाही दरबार के जितने कवि लिखे हैं, उनमें से अधि

काश आपके आश्रित रह चुके थे। उरफी, नजीरी और शकवी आदि कवियों ने अकबर, जहाँगीर और शाहजादे मुराद की प्रशंसा में कविता की है, परन्तु उनसे कहीं बढ़कर खानखाना की प्रशंसा में इन्हीं कवियों ने कविता की है, जिससे इनकी उच्च उदाराशयता और काव्य मर्मज्ञता प्रकट होती है।

साहित्य-मर्मज्ञ और प्रतिभाशाली कवि होने के सिवा ये बड़े दानी और परोपकारी भी थे। मुल्ला शकेबी को आपने मीरजानी पर विजय पाने के समय एक मुसद्दस के लिये दो हजार अशर्फियाँ पुरस्कार-स्वरूप दी थीं और 'गग' कवि को एक ही छन्द पर ३६ लाख रुपये दे डाले थे। अपने दोहों में भी इन्होंने दान की खूब ही प्रशंसा की है।

यह भी किंवदन्ति है कि गोस्वामी तुलसीदास से भी इनका परिचय था। एक बार एक ब्राह्मण को, जो कन्या के विवाह हेतु धन का इच्छुक था, गोस्वामीजी ने इनके पास निम्न आधे दोहे को लिखकर भेजा—

"सुर तिय नर तिय नाग तिय, सब चाहत अस होय"

रहीम ने ब्राह्मण को धन देकर दोहे की पूर्ति इस प्रकार करके उसे तुलसीदास के पास भेज दिया।

"गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय"

अकबर की नीति

अकबर से पूर्व साढ़े तीन सौ से अधिक वर्ष की तुर्क और पठानों की बादशाहत में निरन्तर हिन्दुओं के साथ छेड़ छाड़ और लड़ाई झगड़े चलते रहे। धर्म-द्वेष के कारण वे हिन्दुओं को तुच्छ समझते रहे। इसी कारण हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर की प्रीति कभी स्थापित न हुई। इन्हीं आन्तरिक उपद्रवों से लाभ उठाकर एक मुसलमान राजवंश के बाद दूसरा राजवंश इस देश का स्वामी बनता रहा। यद्यपि मुगल और पठान आदि एक ही धर्म के माननेवाले थे, तो भी राज्य व्यवहार में धर्म के नाते या

कभी विचार नहीं किया गया। अपना राज्य भारत के अधिकांश भाग से उठ जाने के कारण पठान आदि मुगलों के शत्रु हो रहे थे। इस भय को मिटाने के लिए अकबर-जैसे नीति निपुण बादशाह ने शाह तहमास्प की हुमायूँ को दी हुई शिक्षा को कार्य रूप में परिणत करने का निश्चय किया। मुसल्मानी कट्टरपन को छोड़कर उसने हिन्दुओं को अपनाया। अकबर की इस नीति से भावों के पारस्परिक आदान प्रदान को अच्छी उत्तेजना मिली।

अकबरी दरबार

अकबर पहला ही मुसल्मान बादशाह था जिसने हिन्दी-कवियों को आश्रय दिया। कहा जाता है कि अकबर स्वयं 'अकबर शाह' के नाम से कविता करता था। अकबर के कई मुसाहब और सरदार भी हिन्दी के कवि थे। महाराजा बीरबल अकबरी दरबार के मुसाहब और सरदार थे। इन्होंने 'ब्रह्म' के नाम से कविता की है। यह राज-काज में ही चतुर नहीं थे, बल्कि कविता करने में भी निपुण थे। अकबर ने बीरबल को 'कविराय' की उपाधि दी थी। इनके अतिरिक्त राजा टोडरमल, तानसेन, महाराजा मानसिंह, फैजी, अबुल फजल, नरहर, अजयेस कविवर गंग और रहीम उसके दरबार में उपस्थित थे।

अकबर के मंत्रियों में अब्दुलरहीम खाँ खानखाना सब से अधिक प्रतिभाशाली हिन्दी के कवि थे। यह अकबर के पालक बैरम खाँ खानखाना के पुत्र थे। यह अरबी, फारसी, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। यह स्वयं कवि थे और कवियों के उदार आश्रयदाता थे। इनके नीति पूर्ण स्फुट विषय-सम्बन्धी यथार्थ तथा चटकीले भावों से पूर्ण दोहे हिन्दी-संसार में प्रसिद्ध हैं और बिहारीलाल आदि दो चार लोगों को छोड़ और किसी के दोहे इनकी समता नहीं करते।

खानखाना की कविता

यह अरबी, फारसी, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। फारसी,

सस्कृत ओर हिन्दी इन तीनो भाषाओ में इन्होने सफलतापूर्वक कविता की है। इनके निम्नलिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं —

वाक़अत बाबरी का फ़ारसी अनुवाद। मूल ग्रथ तुर्की भाषा में है। तुर्की भाषा से बाबर के इस आत्मचरित का फारसी मे आपने बहुत ही उत्तम ओर शुद्ध अनुवाद किया है। पश्चिमी विद्वानों ने आपके इस अनुवाद की बडी प्रशसा की है।

दीवान फारसी। इसमें आपकी फारसी कविता का सग्रह है।

खेटकौतुकजातकम्। यह ज्योतिष-सम्बन्धी ग्रंथ है ओर छपा हुआ मिलता भी है। इसमें मगलाचरण के पश्चात् यह श्लोक है —

करोम्यब्दुल रहीमोऽहं, खुदाताला प्रसादत ।
पारसी पदैर्युक्तम्, खेट कोतुक जातकम् ॥

इसमें सस्कृत शब्दो के साथ फारसी शब्दो की पुट अपने ढँग की निराली छटा रखती है।

रहीम-सतसई। प० नकछेदी तिवारी ने लिखा है कि इन्होंने 'रहीम-सतसई' नामक एक ग्रथ लिखा था। यह ग्रथ अप्राप्य है। अब तक जो दोहे मिले हैं वे इसी सतसई के बिखरे हुए मोती माने जाते हैं। ये मुक्तक साहित्य-सागर मे टटोल-टटोल कर इकट्ठे किये जा रहे हैं। ऐसी दशा में यह दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि दूसरे कवियो के दोहे इनके साथ नहीं मिले हुए हैं। यद्यपि खानखाना ने अपने दोहो में 'रहीम' या 'रहिमन' की छाप रक्खी है, परन्तु मेरा अनुमान है कि कुछ दोहे ऐसे भी हैं जिनमें भूल से या जान-बूझकर रहीम की छाप तो रख दी गई है, परन्तु वे दूसरे कवियो के हैं। जब तक दो-चार पुराने हस्तलिखित सग्रह प्राप्त न हों तब तक दावे के साथ यह कहना कि यह दोहा रहीम का है और यह दूसरे का है, एक कठिन समस्या है। मैने भी दोहावली के नाम से रहीम के २६९ दोहों का संग्रह दिया है। इससे अधिक इस समय प्राप्त नहीं हैं।

बरवै नायिका भेद। ग्रथ का विषय नाम से ही स्पष्ट है। इस

ग्रन्थ को पहले पहल डुमरॉव निवासी प० नकछेदी तिवारी ने प्रकाशित कराया था। इसमें कवि ने लक्षण न देकर उदाहरण मात्र दिये हैं। यह बड़े आनन्द का विषय है कि हस्तलिखित ग्रंथ मिल जाने से इस बार इस ग्रन्थ की छन्द-संख्या ११४ तक पहुँच गई है और पाठ भी शुद्ध हो गया है।

मदनाष्टक। इसका सम्पादन भी एक हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर किया गया है।

रास पंचाध्यायी। यह ग्रंथ अप्राप्य है। भक्तमाल की टीका में जो दो पद पाये जाते हैं वे 'रास-पंचाध्यायी' के कहे जाते हैं। वे फुटकर-संग्रह में दिये गये हैं।

शृंगार-सोरठ। खानखाना के इस ग्रन्थ का उल्लेख शिवसिंह सेंगर ने अपने सरोज में किया है परन्तु अब तक यह ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ है। इनके सोरठों में से कुछ सोरठे अलग करके इस ग्रन्थ का स्वरूप खड़ा किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह सोरठे इतने चमत्कार पूर्ण हैं कि खानखाना के दूसरे सोरठों के साथ नहीं मिलाये जा सकते। ये सोरठे इस बात को प्रमाणित करते हैं कि शृङ्गारिक सोरठों की रचना रहीम ने अलग ही की होगी।

फुटकर-काव्य। रहीम की कुछ हिन्दी की फुटकर कविता भी पाई गई है जो 'फुटकर काव्य' शीर्षक के नीचे एकत्र कर दी गई है।

रहीम काव्य। इस ग्रन्थ में रहीम के संस्कृत श्लोकों का संग्रह है। 'खेटकौतुकजातकम्' से यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि खानखाना ने संस्कृत में भी कविता की है। मेरे अनुमान से 'रहीम-काव्य' नाम का ग्रन्थ तो रहीम ने कोई लिखा नहीं परन्तु मनोविनोद के लिये संस्कृत और संस्कृत हिन्दी मिश्रित श्लोकों की रचना अवश्य की होगी। इन्हीं श्लोकों का संग्रह इस नाम का काव्य ग्रन्थ समझना चाहिए।

काव्य-भाषा

रहीम-कृत हिन्दी ग्रन्थों में सतसई और बरवै नायिका भेद—यही दो मुख्य हैं। दोहों की भाषा के सम्बन्ध में बाबू ब्रजरत्नदास ने लिखा है—
"दोहों की भाषा मुख्यत ब्रजभाषा है।"

मिश्रबंधुओं ने लिखा है—"इन्होंने शुद्ध ब्रजभाषा में कविता की है और फारसी एव संस्कृत के पूर्ण विद्वान होने पर भी ग्राम्य भाषा तक का उत्तम प्रयोग करने में ये कृतकार्य हुए हैं।"

प० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"रहीम ने अवधी भाषा की ओर विशेष रुचि दिखाई। 'बरवैनायिका भेद' तो इन्होंने अवधी भाषा में लिखा ही, अपने नीति के चुटीले दोहों में भी अवधी के भोलेपन का पूरा सहारा लिया।"

यह सब स्वीकार करते हैं कि 'बरवै नायिका भेद' की भाषा अवधी है, परन्तु मेरी राय में दोहों की भाषा भी न तो शुद्ध ब्रजभाषा है और न मुख्यत ब्रजभाषा। रहीम की रुचि पूर्वी हिन्दी की ओर विशेष पायी जाती है।

यहाँ पर यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि रहीम के दोहों की भाषा के सम्बन्ध में तब तक निश्चयात्मक कुछ नहीं कहा जा सकता है जब तक उनकी सतसई की कोई प्रामाणिक हस्तलिखित पुस्तक प्राप्त न हो, क्योंकि अभी तो जन श्रुति ही इसका आधार है। अत भाषा का निर्णय करना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य तो अवश्य है। फिर भी सर्वनाम, कारक, विशेषण और शब्दों आदि को देखकर कहा जा सकता है कि इनकी विशेष रुचि अवधी ही की ओर थी। देखिये—

खड़ी बोली के 'कौन', 'जो' और 'वह'—यह तीन सर्वनाम ऐसे हैं जिनका प्रयोग अवधी भाषा में दो प्रकार का पाया जाता है। के, जे, से या ते और को, जो, सो।

पूर्वी अवधी में के, जे, मे या ते और पश्चिमी अवधी में को, जो, मो मिलते हैं।

रहीम के यहाँ दोनो प्रकार के प्रयोग पाये जाते हैं, पर विशेष झुकाव पश्चिमी अवधी की ओर पाया जाता ह। यह भाषा ब्रजभाषा मे अधिक लगाव रखती है। यथा —

"को कासो अचरज कहै।
"जो जानत सो कहत नहिं।
"जो रक्षक जननी-जठर।
"प्रभु के सो आपनि कहैं।
"ते रहीम रघुनाथ।
"तुम विन को भगवान।
"जानि अनीती जे करें।
"जे सुलगे ते बुझि गये। —इत्यादि

को, जो और सो का रूप कारक-चिन्ह ग्रहण करने पर ब्रजभाषा के समान का, जा और ता होना है। जैसे —

"काके काके नवत हम।
"तासों कहा बसाय।
"जांके सिर पर।
"जासों लागे नैन।
"जापर विपदा परत है।
"तासो दुख सुख कहनकी। —इत्यादि

परन्तु के, जे, मे या से का रूप सामान्य विभक्ति 'हि' के साथ कारक चिन्ह लगाने पर भी नहीं बदलता। जैसे—

"'रहिमन' जेहि के बाप कर।
"तेहिके गइल अकास लौं॥

"घटै-चढ़े तिहिकर कहा।
"भावी केरि कौं ना दही।
"केहिकै प्रभुता ना घटी। आदि

यही नहीं, रहीम ने व्यक्तिवाचक सर्वनाम भी अवधी भाषा के ही प्रयोग किये हैं।

हिन्दी के सम्बन्धकारक-चिन्ह में लिङ्ग-भेद होता है। ब्रजभाषा में पुल्लिङ्ग सम्बन्धकारक-चिन्ह 'का' है और स्त्रीलिङ्ग सम्बन्धकारक-चिन्ह 'की'। तुलसी और जायसी दोनो में पुल्लिङ्ग सम्बन्धकारक चिन्ह 'कर' पाया जाता है और स्त्रीलिङ्ग सम्बन्धकारक-चिन्ह 'कै'। उदाहरण —

१—राम ते अधिक राम कर दासा।
जेहि पै कृपा राम कै होई। —तुलसी

२—सुनि तेहि सन राजा कर नाऊ।
पलुही नागवती कै वारी। —जायसी

रहीम में भी सम्बन्धकारक के चिन्हों में ऐसा ही लिंग भेद है। रहीम ने पुल्लिङ्ग में 'के' का प्रयोग किया है और स्त्रीलिङ्ग में 'कै' 'कइ' या 'केरि' का। उदाहरण —

"यह बरवै के बान।
"आज नयन के कोरवा।
"लै हीरन के हरवा।
"वह माया कर दोष यह।
"जम के किंकर कानि।
"बाढ़े दिन के मीत सब।
"रहिमन जेहि के बाप कर।
"तन के पीर।

"रैन जगे कइ निंदिया।
"चेरिया केरि छोहरिया।
"पायल केरि कँकरिया।
"प्रभु क सा आपनि कहै।
"पुरुष पुरातन कै बधू।

१० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि बोलचाल की अवधी में यह लिङ्ग-भेद नहीं है। पूर्वी अवधी में सम्भव है न हो, परन्तु पश्चिमी अवधी में आजकल भी यह लिङ्ग-भेद पाया जाता है। बोलचाल की पश्चिमी अवधी में पुलिङ्ग सम्बन्धकारक चिन्ह 'के' 'केर' या 'क्यार' हैं और स्त्रीलिङ्ग सम्बन्धकारक चिन्ह 'कै', 'कइ' या 'केरि'। जैसे—"श्रीकृष्ण के बप्पा आजु आये हैं", "यह केहि केर या केहि क्यार खेतु आय", "श्रीकृष्ण कै महँतारी कहाँ है" तथा "यह बाग केहि केरि आय"। इत्यादि

बोलचाल में उच्चारण संक्षिप्त करने की प्रवृत्ति के कारण अक्षर घिस जाया करते हैं। इस प्रवृत्ति के अनुसार 'केर' के स्थान म 'के' और 'कर' के स्थान में 'क' का प्रयोग पाया जाता है। तुलसी, जायसी और रहीम तीनों में ये सक्षिप्त रूप मिलते हैं। यथा—

क—धनपति उहै जेहि क ससारू। —जायसी
ख—पितु आयसु सब धरम क टीका। —तुलसी
ग—जाति क ऊँच। —रहीम
घ—रहति नयन के कोरवा। —रहीम

अवधी भाषा की प्रवृत्ति लघ्वत शब्दों की ओर अधिक है। रहीम ने अपने दोहों में विशेषण अधिकतर लघ्वत ही रक्खे हैं।

"यह माया कर दोष यह।
"बड़े छोट हुइ जात।

"मिले होत रंग दून ।
"कितो करौ बड़ काम ।
"चितत ही बड़ लाभ के ।

आदि

यही नहीं, पूरबी शब्दों का प्रयोग भी रहीम ने अपने दोहों में अधिकता से किया है । यथा—

रहिमन रहिला के भली । रहिला=चना
सहिं कै सोच बेसाहियो । सहिं कै=जान-बूझकर
बीच उखारी रमसरा । रमसरा=ईख की शक्ल का एक पेड़
जाड़ गये से काज । जाड़=जाड़ा, सर्दी
अररानी उहि ठाम । अररानी=अरराकर बैठ जाना
मत तोरो चटकाय । चटकाय=चटकई, जल्दी
रहिमन भऊँरिन के भये । भऊँरिन=भाँवरें
गरुये राखि बटोर । गरुये=गरु, भारी
जूती खात कपाल । कपाल=कपार, माथा

इत्यादि

काव्य-प्रियता

रहीम के काव्य का लोगों में इतना आदर क्यों है ? कारण स्पष्ट है । कवि ने जो कविता लिखी है, सरस और प्रसादगुण-पूर्ण होने के साथ ही साथ हिन्दुओं के प्रति उदारता की एक अपूर्व झाँकी उसके अन्तर्गत पाई जाती है । यद्यपि कबीर व नानक आदि सन्तों ने निर्गुणोपासना को ही अभीष्ट मान हिन्दू और मुसलमानों को मिलाने का प्रयत्न किया है और इस मिलाप के लिए दोनों मतावलम्बियों की कड़ी से कड़ी आलोचना करने में वह नहीं हिचके हैं, परन्तु रहीम का मार्ग ही दूसरा है । इन्होंने

महात्मा तुलसीदास का अनुसरण किया है। इनके नीचे के दोहे पढ़ने से स्पष्ट प्रकट हो जायगा कि यह भक्ति-मार्ग के दृढ़ अनुयायी थे —

राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपादि।
कहं 'रहीम' तिहिं आपुनो, जनम गॅवायो वादि॥
गहु सरनागत राम की, भवसागर की नाव।
'रहिमन' जगत उधार कर, और न कछू उपाव॥
'रहिमन' धोखे भाव से, मुख से निकसत राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम॥
'रहिमन' मनहिं लगाइ के, देखि लेहु किन कोइ।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होइ॥

इत्यादि

इनका काव्य कोई शृङ्खला-बद्ध काव्य नहीं है। इन्होंने अनेक विषयों पर फुटकर दोहे कहे हैं और उनमें मनुष्य के नित्यप्रति की व्यावहारिक वस्तुओं को शिक्षा की सामग्री बनाकर ऐसा सजा दिया है कि बात-बात में अनोखापन प्रकट हुआ है।



रहिमन-विनोद

दोहावली

धर्मगुच्छ

समय का प्रभाव सभी पर पड़ता है, चाहे वह किसी विचार व परिस्थिति का व्यक्ति क्यों न हो। यद्यपि रहीम मुसलमान थे, पर जिस समय में वे हुए और उन्होंने कविता की उस समय एकदम राम व कृष्ण की भक्ति का स्रोत धारावाहिक रूप से बह रहा था। फिर भला उनके ऊपर उसका प्रभाव न पड़ता, यह कैसे संभव था। यही कारण है इनकी कविता में उच्च कोटि का वेदान्त ज्ञान तथा रामकृष्ण की भक्ति का अनुपम वर्णन पाया जाता है। कवि के इस वर्णन को पढ़कर सहसा, स्वर्गीय भारतेन्दुजी का, यही पद्य मुख से निकल पड़ता है—"इन मुसलमान हरि जनन पै, कोटिन हिन्दू वारिये"

देखिये, सृष्टि और स्रष्टा के सम्बन्ध को कवि ने कैसे चमत्कार पूर्ण शब्दों में वर्णन किया है —

बिन्दु में सिंधु समान, को कासों अचरज कहै।
हेरनहार हेरान, 'रहिमन' आपुहि[1] आप में॥ १ ॥

पाठा० १—अपुने आपते [रहि०]

कबीर ने इसी भाव को इस प्रकार प्रकट किया है —

हेरत हेरत हेरिया, 'कबिरा' रह्यो हेराय।
बुन्द समानो समुद में, सो कित हेरी जाय॥

ईश्वर अगम्य है

'रहिमन' बात अगम्य कै, कहन सुनन कै नाहिं ।
जो जानत सो कहत नहिं, कहत सो जानत नाहिं ॥ २ ॥

ईश्वर पर भरोसा रक्खो

अमरबेलि बिनु मूल कै, प्रतिपालत जो[1] ताहि ।
'रहिमन' ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिये काहि ॥ ३ ॥
रन बन व्याधि विपत्ति में, 'रहिमन' मरउ न रोइ ।
जो रक्षक जननी-जठर, सो हरि गये न[1] सोइ ॥ ४ ॥
काम न काहू आवई, मोल 'रहीम' न लेइ ।
बाजू टूटे बाज कै, साहेब चारा देइ ॥ ५ ॥

ईश्वर दीनबंधु है

'रहिमन' बहु भेषज करत, व्याधि न छाँड़ति साथ ।
खग मृग बसत अरोगवन, हरि अनाथ के नाथ ॥ ६ ॥
संतत[1] संपतिवान काँ, सब कोऊ सब[2] देइ ।
दीनबंधु बिनु दीन कै, को 'रहीम सुधि लेइ ॥ ७ ॥
समय दशा कुल देखि कै, लोग करत सनमान ।
'रहिमन' दीन अनाथ के, तुम बिन को भगवान ॥ ८ ॥
दीन[1] लखै सब जगत काँ, दीनहिं लखै न कोइ ।
जो 'रहीम' दीनहि लखै, दीनबंधु सम सोइ[2] ॥ ९ ॥

पाठा० ३—१ हैं [रहि०, र०] ४—१ कि [रहि०, र० दो०]
७—१ सतत संपति जान के, सब को सब कछु देत [रहि०, र०]
, २ बहु [र० दो०]
९—१ दीन सबन को लखत हैं [र०, रहि०] २ होय [रहि०, र०

राम-महिमा

राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि।
कह 'रहीम' तिहि आपुनो, जनम गँवायो बादि॥ १० ॥
'रहिमन'[1] राम न उर धरै, रहत विषय लपिटाइ।
पसु खरि खात सवाद सों, गुरु गुलियाये खाइ॥ ११ ॥
गहु सरनागत राम के, भवसागर कै नाव।
'रहिमन' जगत उधार कर, और न कछू उपाव॥ १२ ॥
'रहिमन' धोखे भाव से, मुख ते निकसत राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक के धाम॥ १३ ॥
राम नाम जानेउ नहीं, भइ पूजा में हानि।
कह 'रहीम' क्यों मानि हैं, जम के किंकर कानि॥ १४ ॥
मागे मुकुरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
मगत आगे मुख लह्यो, ते 'रहीम' रघुनाथ॥ १५ ॥
दुख नर सुनि हाँसी करैं, नाहिं धरावत धीर।
कही सुने सुनि दुख हरें, 'रहिमन' वे रघुबीर॥ १६ ॥
मनि मानिक महँगे किये, ससते तृन जल नाज।
'रहिमन' याते कहत हैं, राम गरीब नेवाज॥ १७ ॥

पा० ११—१ राम नाम नहि लेत हैं, रहो विषय लपिटाय।
घास चरैं पसु आप ते, गुड़ गुलियाये खाय॥ [र० दो०]
१३—इसीके समानार्थक महात्मा तुलसीदासजी का यह दोहा है —
'तुलसी' जिनके मुखन मे, धोखेहु निकसत राम।
तिनके पग की पगतरी, मेरे तन को चाम॥
१७—इसी भाव को 'तुलसीदास' ने निम्न प्रकार व्यक्त किया है —
मनि मानिक महँगे किये, सहँगे तृन जल नाज।
'तुलसी' ये तो जानिये, राम गरीब-नवाज॥

'रहिमन'[1] हम तुम सों करी, करी करी जो तीर।
बाढे दिन के मीत सब[2], गाढे दिन रघुबीर॥ १८

श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रति

तैं[1] 'रहीम' मन आपुनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर॥ १९॥
'रहिमन' कोऊ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पत-राखनहार है, माखन-चाखनहार॥ २०॥

लक्ष्मी की अस्थिरता

कमला थिर न 'रहीम' कह, यह जानत सब कोइ।
पुरुष पुरातन के बधू, क्यों न चंचला होइ॥ २१॥
कमला थिर न 'रहीम' कह, लखत अधम जे कोइ।
प्रभु कैसो आपनि कहैं, क्यों न फजीहति होइ॥ २२॥

पाठा० १८—१ जैसी तुम हम सों करी [रहि०, र०]। 'र० दो०' में 'जैसी' के स्थान पर 'ऐसी' है।

१८—२ हो [रहि०, र०]

पाठा० १९—१ जिहि [र०]

२०—इस भाव को 'रसखान' ने इस प्रकार कहा है —

कहा करै 'रसखान' को, कोऊ चुगल लबार।
जो पै राखनहार है, माखन चाखनहार॥

चन्द्र-कलङ्क

'रहिमन' जेहि क बाप कर, पानी पियत न कोइ।
तेहि के गइल अकास लों[१], क्यों न कालिमा होइ ॥ २३ ॥

भक्ति

तनु 'रहीम' है कर्म-बस, मनु राखौ उहि[१] ओर[२]।
जल में उलटी नाव ज्यों, खेंचत गुन के जोर ॥ २४ ॥
धन दारा औ सुतन में[१], रहत लगाये चित्त।
[२]क्यों 'रहीम' खोजत नहीं, गाढे दिन कर मित्त ॥ २५ ॥
आप अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपन नाहिं।
'रहिमन' गलि है साँकरी, दोनो नहिं ठहराहिं ॥ २६ ॥
भजउँ तो काका मैं भजउँ, तजउँ तो को है आन।
भजन तजन ते बिलग है, तेहि 'रहीम' त जान ॥ २७ ॥

पाठा० २३—१ म [र०]

(२३) इसी भाव पर 'जादव' ने निम्न प्रकार कहा है —
'जाद्व जाके नीर को, कवौं न अँचवत कोय।
ताको पूत कपूत यह, कस न कलंकी होय ॥

पाठा० २४—१ ओहि [रहि०], २ थोर [र० दो०]

पाठा० २५—१ सो, रम्यो रहे नित चित्त।
२ नहिं 'रहीम' कोऊ लख्यो। [रहि०]

२७—'कबीर' ने इसी भाव पर इस प्रकार कहा है —
भजूँ तो को है भजन को, तजूँ तो को है आन।
भजन तजन के मध्य में, सो 'कबीर' मन मान ॥
और 'तुलसीदास' ने निम्न प्रकार कहा है —
घर कीन्हें घर जात है, घर छोड़े घर जाय।
'तुलसी' घर-बन बीच ही, राम-प्रेम पुर छाय ॥

'रहिमन'[1] मनहिं लगाइके, देखि लेहु किन कोइ।
नर काँ वस करिबो कहा, नारायन वस होइ॥ २८॥
अंजन देहुँ ताे किरकिरी, सुरमा दियो न जाइ।
जिन आँखिनसों हरिलख्यो, 'रहिमन' बलिबलिजाइ॥ २९॥
स्वासह तुरिय जो उच्चरै, तिय है निहचल चित्त।
पूत परा घर जानिये, 'रहिमन' तीन पवित्त॥ ३०॥

भक्ति का भगवान के प्रति उपालम्भ

'रहिमन' कीन्हीं प्रीति, साहब काँ भावै नहीं।
जिनके अगनित मीत, हमैं गरीबन को गनै॥ ३१॥
परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेश।
बावन ह्वै बलि काँ छल्यो, भल दीन्हेउ उपदेश॥ ३२।
खैंचि चढनि ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आज कालिह मोहन गही, बंस दिया कै रीति॥ ३३।
जो 'रहीम' करिबो हुतो, ब्रज कर यहै[1] हवाल।
तो[2] नाहक कर पर धर्यो, गोवर्धन गोपाल॥ ३४।
हरि 'रहीम' ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपुनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर॥ ३५।

ज्ञान

ज्यों[1] 'रहीम' इक[2] दीप ते, प्रगट सबै निधि[3] होय।
तनु-सनेह कैसे दुरै, दृग-दीपक जहँ[4] होय॥ ३६।

पाठा० २८—१ मनहि लगाइ 'रहीम' प्रभु।
पाठा० ३४—१ यही [र०], २ तो कत मानहि दुख दियो, गिरवरध गोपाल [र०]। 'नाहक' की जगह 'काहे' [रहि०
पाठा० ३६—१ कहि, ३ दुति, ४ जर [रहि०]
२ गति [र० दो०]

यों 'रहीम' तनु-हाट में, मनुआ गयो बिकाय ।
ज्यों[1] जल में काया परे, छाया भीतर नाँय ॥ ३७ ॥
जो 'रहीम' तनु हाथ है, मनसा[1] कहुँ किन जाहिं ।
जल में ज्यों छाया परे, काया भीजति नाहिं ॥ ३८ ॥
कहु 'रहीम' केतिक रही, केतिक गई बिहाय ।
माया ममता मोह में, अन्त चले पछिताय ॥ ३९ ॥
× रहिमन' भेषज के किये, काल जीत जो जात ।
बडे बडे समरथ भये, तौ न कोउ मरि जात ॥ ४० ॥

माया

'रहिमन' उतरे पार, भार झोंकि के भार में ।
जिनके सिर पर भार, वे[1] बूडे मँझधार में ॥ ४१ ॥
चरन छुए मस्तक छुए, तऊ[1] न छाँडति पानि ।
हिये छुवत प्रभु छाडिदे[2], कहु 'रहीम' का जानि ॥ ४२ ॥

देह की असारता

'रहिमन' गठरी धूरि कै, रही पवन ते पूरि ।
गाँठि युक्ति कै खुलि गई, अन्त धूरि के धूरि ॥४३॥

पाठ० ३७—१ ज्यों जल में छाया परे, काया भीतर नाँय । [रहि०]
पाठ० ३८—१ मनुवा गये ते काहि [र० दो०]
पाठ० ४१—१ पै [रहि०]
'अहमद' के यहाँ यह दोहा इस रूप में पाया जाता है ।
'अहमद' उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ।
जाके सिर पर भार, वे बूड़े मँझधार ॥
पाठ० ४२—१ तेहु नहि । २ छोडि दै [रहि०]

कागद को सो पूतरा, सहजहि में घुलि जाय।
'रहिमन' यह अचरज लखो, सोऊ खेंचत वाय ॥ ४४ ॥
तै 'रहीम' अब कौन है, एती खैंचत वाय।
खस कागद को पूतरो, नमी माहिं खुलि जाय ॥ ४५ ॥

संसार कर्मक्षेत्र है

सौदा करो सो करि चलहु, 'रहिमन' याही हाट[1]।
फिर सौदा पैहो नहीं, दूरि जान है बाट ॥ ४६ ॥

संसार आवागमन का क्षेत्र है

सदा नगारा कूचकर, बाजत आठो जाम।
'रहिमन' या जग आइ कै, को करि रहा मुकाम ॥ ४७ ॥

---

(४४) इस भाव पर 'उस्मान' कवि ने निम्न प्रकार कहा है।

कौन भरोसा देह का, छाड़हु जतन उपाइ।
कागद की जस पूतरी, पानि परे घुलि जाइ ॥

पाठा० ४६—१ घाट [रहि०]



शृङ्गार-गुच्छ

पाठक यह न समझ कि रहीम कवि उच्च कोटि की फिलोसफी ही छाँटते रहे हैं। उन्होंने शृंगार विषयक यद्यपि बहुत थोड़े दोहे कहे हैं, परन्तु जो कहे हैं वे पाठकों की तबियत में एक खास तरह की गुलगुलाहट पैदा कर देते हैं। देखिए —

कुच-वर्णन

मनसिज माली कै उपज, 'रहिमन' कही न जाय।
फल स्यामा के उर लगे, फूल स्याम उर माँय ॥ ४८ ॥
जो अनुचित कारी तिन्हें, लगे अंक परिनाम।
लखे उरज उर-बेधियत, क्यों न होय मुख स्याम ॥ ४९ ॥

नेत्र-वर्णन

[1]'रहिमन' मन महराज के, दृग सों नहीं दिवान।
देखि जाहि रीझैं नयन, मन तेहि हाथ बिकान ॥ ५० ॥
'रहिमन' चोट सु तीर कै, चोट खाइ बचि जाइ।
नैन-बान कै चोट ते, धनवन्तरि न बचाइ ॥ ५१ ॥
यों 'रहीम' जग मारियो, नैन-बान कै चोट।
भगत भगत कोइ बचि गये, चरन-कमल की ओट ॥ ५२ ॥

पा० ५०—१ मन से कहाँ 'रहीम' प्रभु, दृग सों कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान ॥
[रहि०, र० दो०]

नैन सलोने अधर मधु, कहु 'रहीम' घटि कौन।
मीठो भाव लौन पर, अरु मीठे पर लौन॥ ५३॥
बाँकी चितवनि चितगड़ी, सूधी तो कछु धीम।
गरमी ते यदि होत दुख, काढ़ि न कढ़त 'रहीम'॥ ५४॥

कमल

पसरि पत्र झपहिं पितहिं, सकुचि देत ससि सीत।
कह 'रहीम' कुलकमल के, को बैरी को मीत॥ ५५॥

रहिमन' सो न कछू गने, जासो लागे नैन।
सहि के सोच बेसाहियो, गयो हाथ कर चैन॥ ५६॥
विरह रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्योत।
ज्यों 'रहीम' भादों निसा, चमकि जात खद्योत॥ ५७॥
प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाइ।
भरी सराय 'रहीम' लखि, आप पथिक फिरि जाइ॥ ५८॥
कहा करो बैकुंठ ले, कल्पवृक्ष के छाँह।
१ 'रहिमन' ढाक सराहिये, जो प्रीतम-गल-बाँह॥ ५९॥
जे सुलगे ते बुझि गये, बुझे ते सुलगे नाहिं।
'रहिमन' दाहे प्रेम के, १बुझि बुझि के सुलगाहिं॥ ६०।

---

(५८) 'रसनिधि' ने इस भाव को यों व्यक्त किया है—
पथिक आपने पथ लगो, इहाँ रहा न पुसाइ।
'रसनिधि' नैन सराय में, बस्यो भावतो आइ॥

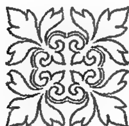
पाठा० ५९—१ 'रहिमन' दाख सुहावनो, जो गल पीतम-बाह॥ [रहि०]
यह दोहा अहमद के दोहों में भी पाया जाता है। अन्तर केवल 'रहिमन' की जगह 'अहमद' है।

पाठा०-६०—१ बूझि-बूझि [र०]

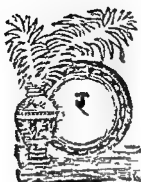
याते जान्यो मन भयो, जरि बरि भस्म बनाइ।
'रहिमन' जाहि लगाइये, सो रूखो ह्वै जाइ ॥ ६१ ॥
[1]रूप 'रहीम' विलोकतहिँ, मन जहँ जहँ लगि जाइ।
[2]थाक्यो ताकहिँ आप बहु, लेत छुड़ाइ-छुड़ाइ ॥ ६२ ॥
'रहिमन' इक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बहि गई, बीचन परे पहार ॥ ६३ ॥

६२—१ रूप विलोकि 'रहीम' तहँ [रहि०]
रूप 'रहीम' विलोकि सेहि [र०]
२ थाके [रहि०, र०], थाके ना कहि [र० दो०]

६३—घनानन्द ने इस भाव को यों व्यक्त किया है —
"तब हार पहार से लागत हे, अब आय के बीच पहार परे"



नीति-गुच्छ



हीम ने सबसे अधिक दोहे नीति विषयक कहे हैं। इस विषय पर कवि की पेनी निगाह व बारीकी देखते ही बन आती है। अनुभव भी कितना बढ़ा चढ़ा है, इसका अनुमान इसी एक बात से किया जा सकता है कि कवि की निगाह छोटी से छोटी बात से लेकर बड़ी से बड़ी बात तक पहुँची है और सब पर ही प्रकाश डाला है।

पाठक कवि की अनोखी सूझ और बात-बात में चोज़ पैदा करने वाली प्रतिभा-पूर्ण कविता को पढ़कर स्वयं ही अनुमान कर सकेंगे कि कवि ने गागर में सागर भरने का चमत्कार पूर्ण प्रयत्न किया है।

परोपकारी जन धन्य है

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियत[1] न पानि।
कहि 'रहीम' पर काज हित, सम्पति सुचहिं[2] सुजान॥ ६४॥
वे[1] 'रहीम' नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाँटनवारी के लगे, ज्यों मेहँदी को रंग॥ ६५॥

पाठा० ६४—१ पियहि न पान [रहि०, र०]
२ धरैं [र० दो०]

महात्मा तुलसीदास जी का निम्न दोहा इसी का समानार्थक है —

'तुलसी' सन्त सुअम्ब तरु, फूल फलहिं पर हेत।
इतते ये पाहन हनैं, उतते वे फल देत॥

पाठा० ६५—१ यों रहीम सुख होत है, उपकारी के अंग। [र०]

'रहिमन' पर उपकार के, करत न पारै[1] बीच।
माँस दियो सिबि भूप ने, दीनों हाड़ दधीच ॥ ६६ ॥

बट-बरोह

आवत[1] काज 'रहीम' कह, गाढ़े बंधु सनेह।
जीरन होतहिं पेड़ ज्यों, थाँभै बरहिं बरेह ॥ ६७ ॥

जाति-गौरव

यों[1] 'रहीम' सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ[2] निरखि, आँखिन कों सुख होत ॥ ६८ ॥

'रहिमन' अपने गोत कहँ, सबै चहत उतसाह।
मृग उछरत आकास कहँ, भूमि खनत बाराह ॥ ६९ ॥

दान ही जीवन है

तबहीं लगि जीबो भलो, दीबो पर न धीम।
बिन[1] दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै 'रहीम' ॥ ७० ॥

पाठा० ६६—१ यारी [रहि०]

६७—१ आवत काम 'रहीम' हैं, बंधु निरन्तर गहि मोह।
जीरन पेड़हि के भये, राखत बरहिं बरोह ॥
[र०]

६८—१ सुख 'रहीम' अति होत हैं, बढ़त आपने गोत।
[र०, दो०]

२ अँखियानि लखि [र० दो०]

७०—१ जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय 'रहीम'
[रहि०, र०, दो०]

समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित 'रहिमन' लगै, समय चूक कै हूक ॥ ९५ ॥

हंस की इच्छा मानसरोवर पर क्यों है ?

✓ मानसरोवर ही मिले, हंसनि मुकता भोग।
सफरिन भरे 'रहीम' सर, बक[1]-बालकनहिं जोग ॥ ९६ ॥

राज्य-प्रणाली

'रहिमन' राज सराहिये, ससि[1] सम सुखद जो होइ।
कहा बापुरो[2] भानु है, तपै[3] तरैयनि खोइ ॥ ९७ ॥

गम्भीरता

भूप गनत लघु गुनिन कों, गुनी गनत लघु भूप।
'रहिमन' नभ[1] ते भूमि लौं, लखौ तौ एकहि रूप ॥ ९८ ॥

प्रेम-प्रीति

प्रेम पथ ऐसो कठिन, सब कोउ निवहत नाहिं।
'रहिमन'[1] मैन-तुरग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं ॥ ९९ ॥

९५—इसी भाव का तुलसीदास जी का भी यह दोहा है —
लाभ समय को पालिबो, हानि समय की चूक।
सदा विचारैं चारु मत, सुदिन कुदिन दिन बूक ॥

पाठा० ९६—१ विपुल बलाकनि [र०]
९७—१ जो निधु की बिधि होय [र० दो०]
२ निगोड़े तरनि को [र० दो०]
३ तप्यो [रहि०, र०, र० दो०]
९८—१ गिरि [रहि०, र० नो०]
९९—१ चढ़ि कै मैन-तुरग पर [र०, र० दो०]
'रहि०' में 'रहिमन' की जगह 'लालन' है।

'रहिमन' मारग प्रेम कर, मत[1] मतिहीन मँझाव।
जो डिगिहौ तो फिर कहूँ, नहिं धरिबे को पाँव॥ १०० ॥
'रहिमन' धागा प्रेमकर, मत तोरउ[1] चटकाइ।
टूटे से फिरि ना मिलै, मिले गाँठि परि जाइ॥ १०१ ॥
मीन काटि जल धोइये, खाये अधिक पियास।
'रहिमन' प्रीति सराहिये, मुयेउ मीत कै आस॥ १०२ ॥
'रहिमन' प्रीति सराहिये, मिले होत रँग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सपेदी चून॥ १०३ ॥
जलहिं मिलाइ 'रहीम' ज्यों, कियो आप सम छीर।
अँगवहि आपुहि आपु लखि, सकल आँच कै भीर॥ १०४ ॥
'रहिमन' प्रीति न कीजिये, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँके तीन॥ १०५ ॥
[1]'रहिमन' खोजो ऊख में, कहाँ न रस की खानि।
जहाँ गाँठि तहँ रस नहीं, यही प्रीति कै हानि॥ १०६ ॥

पाठा० १००—१ तिन तुमै मति जाव। [र०, र० दो०]
१०१—१ तोड़ो छिटकाय [रहि०]
१०२—इसी भाव पर एक अन्य कवि ने निम्न प्रकार कहा है —
प्रेमी प्रीति न छाँड़हीं, होत न प्रन ते हीन।
मरे परे हू उदर में, जल चाहत है मीन॥ [सु० स०]
१०५—वृन्द ने इस भाव को निम्न प्रकार व्यक्त किया है —
ऊपर दरसै सुमिल सी, अन्तर अनमिल आँक।
कपटी जन की प्रीति है, खीरा की सी फाँक॥
१०६—१ 'रहिमन' जग की रीति, मै देखी रस ऊख में।
ताहू में परतीति, जहाँ गाँठि तहँ रस नहीं॥
[रहि०, र० दो०]

'रहिमन' यह न सराहिये, लेन-देन के प्रीति।
प्रानहिं[1] बाजी राखिये, हारि होइ कै जीति ॥ १०७ ॥
'रहिमन' वहाँ न जाइये, जहाँ कपट कर हेत।
हम तन ढारत[1] ढेकुली, सींचत आपन[2] खेत ॥ १०८ ॥
वहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत।
घटत घटत 'रहिमन' घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत ॥ १०९ ॥
कह 'रहीम' या जगत तें, प्रीति गई दै टेरि।
अब[1] रहीम नर नीच में, स्वारथ-स्वारथ हेरि ॥ ११० ॥
[1]सब कहँ सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित 'रहीम' तब जानिये, जब कछु अटकै काम ॥ १११ ॥
जहाँ गाँठि तहँ रस नहीं, यह[1] जानत सब कोय।
मड़ये तर कै गाँठि मे, आठ[2] गाँठि रस होय ॥ ११२ ॥
दादुर मोर किसान मन, लगे रहैं घन माहिं।
पै 'रहीम' चातक रटनि, सरवर के कोउ नाहिं ॥ ११३ ॥

पाठा० १०७—१ प्रानन [रहि०, र०]
१०८—१ ढारत [र०, र० दो०]
२ अपनो [रहि०, र०]
११०—१ रहि [रहि०]
१११—१ सब कोऊ सब सों करै, राम जुहार सलाम।
हित अनहित तब जानिये, जादिन अटकै काम ॥
[र०]
११२—१ यह 'रहीम' जग जोइ [रहि०, र० दो०]
२ गाँठि-गाँठि [रहि०, र०, र० दो०]

कोकिल

पावस देखि 'रहीम' मन, कोयल साधी मौन।
अब दादुर वक्ता भये, हम कहँ पूछत कौन ॥ ११४ ॥

दुष्ट प्रकृति

मन्दन के मारेहु[1] गये, ओगुन गुन[2] न सिराहिं[3]।
ज्यों 'रहीम' बाधहु[4] बधे, मुरहा[5] ह्वै अधिकाहिं ॥ ११५ ॥

'रहिमन' लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाइ।
राग सुनत पय पियत हू, साँप सहज धरि खाइ ॥ ११६ ॥

कुम्हार का चाक

'रहिमन' चाक कुम्हार कर, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लइ लेइ ॥ ११७ ॥

पाठा० ११४—तुलसीदासजी ने इसी भाव पर निम्न प्रकार कहा है :—

'तुलसी' पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलि हैं, हमहि पूछि है कौन ॥

११५—१ मरिहू [रहि०], २ गनि [र०], ३ सराहि [रहि०]
४ बाँधहु बँधे [रहि०], ५ मरहा [रहि०, र०]

११६—महात्मा तुलसीदासजी की निम्न चौपाई का भाव भी ऐसा ही है —

भलहु करै खल पाय सुसंगू।
मिटहि न मलिन स्वभाव अभंगू ॥

देसी स्वान

नहिं 'रहीम' कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग।
देसी स्वान जो राखिये, भ्रमत भूख ही लाग॥ ११८॥

मूर्ख

'रहिमन' नीर पखान, भीजै[1] पै सीझै नहीं।
तैसेइ मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं॥ ११९॥
मूढ़-मंडली में सुजन, ठहरत नहीं बिसेखि।
स्याम कचन से सेत ज्यों, दूरि कीजियत देखि॥ १२०॥

पेट

[1]'रहिमन' पेटै सों कहत, क्यों न भये तुम पीठि।
भूखे मान बिगारहू, भरे बिगारहु डीठि॥ १२१॥
'रहिमन' मैं[1] या पेट सों, बहुत कहेउ समुझाइ।
जो तू अनखाये रहै, का[2] काऊ[3] अनखाइ॥ १२२॥
बड़े पेट के भरन में[1], है 'रहीम' दुख बाढ़ि।
या ते हाथी हहरि कै, दये दाँत दुइ काढ़ि॥ १२३॥

पाठा० ११९—१ बूड़ै [रहि०]
१२१—१ 'रहिमन' कहत सु पेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीतै करत, भरे बिगारत दीठ॥
[रहि०, र०]
१२२—१ भैया [र०, र० दो०], २ कब [र०]
३ काहू [र० दो०]
१२३—१ को [र० दो०]

'रहिमन' बहरी बाज, गगन चढ़ै फिरि क्यों तरै[1]।
पेट अधम के काज, फेरि आइ बधन परै॥ १२४॥

मौर

काज परे कछु और है, काज सरे कछु और।
'रहिमन' भऊँरिन के भये, नदी सिरावत मौर॥ १२५॥

बँबूर

आपु न काहू काम के, डारपात फल मूर[1]।
औरन हूँ[2] रोकत फिरें, 'रहिमन' कूर[3] बबूर॥ १२६॥

चिन्ता

अन्तर दाव लगी रहै, धुआँ न प्रगट सोइ।
[1]कै जिय आपन जानही, कै जिहि[2] बीती होइ॥ १२७॥
'रहिमन' कठिन चिताहुते[1], चिन्ता कहँ चित चेत।
चिता दहति निर्जीव कहँ, चिन्ता जीव समेत॥ १२८॥

पुनर्जन्म

'रहिमन' सुधि सबते भली, लगै जो बारम्बार।
बिछुरे मानुष फिरि मिलें, यहै जान अवतार॥ १२९॥

पाठा० १२४—१ तिरै [रहि०]
१२६—१ फूल [रहि०], २ को [रहि०, र०]
३ पेड़ [रहि०]
१२७—१ कै जिय जानै आपुनो [रहि०, र०]
२ जासिर [रहि०]
१२८—१ चितान [रहि०]

चापलूसी

छोटे[1] काम बड़े करैं, तौ न बड़ाई होइ।
ज्यों 'रहीम' हनुमत कहैं, गिरधर कहै न कोइ ॥ १३० ॥

अड़

अड़ न बौड़ 'रहीम' कह, देखि सचिक्कन पान।
हस्ती-ढक्का कुल्हड़िन, सहैं ते तरुवर आन ॥ १३१ ॥

खिजाब

'रहिमन' थोरे दिनन कहँ, कौन करै मुँह स्याह।
नहीं छलन कहँ पर तिया, नहीं करन कहँ ब्याह ॥ १३२ ॥

दीनता

दिव्य दीनता के रसहि, का जानै जग अंधु।
भली बिचारी दीनता, दीनबंधु से बंधु ॥ १३३ ॥
कहि 'रहीम' धन बढ़ि घटे, जाति धनिन की बात।
घटै बढ़ै उनकर कहा, घास बेंचि जे खात ॥ १३४ ॥
बढ़त 'रहीम' धनाढ्य धन, धनउ धनी कर जाइ।
घटै बढ़ै तिहि कर कहा, भीख मांगि जो खाइ ॥ १३५ ॥

मृदङ्ग

खारा प्यारा जगत मैं, छाला हित कह लेइ।
ज्यों 'रहीम' आटा लगे, त्यों मृदंग सुर देइ ॥ १३६ ॥

पाठा० १३०—१ थोरो किये बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होइ।
[रहि०, र० दो०]

१३६—लाला भगवानदीन ने इसी भाव पर निम्न प्रकार कहा है —
राजी होय न जगत में, को जन भोजन पाय।
मिरदंगहु मुख लेप लहि, मधुरे सुरन बताय ॥

कुपूत

जो[1] 'रहीम' गति दीप कै, कुल कपूत के सोइ।
बारे उजियारो करै, बढ़े अँधेरो होइ ॥ १३७ ॥

सुपूत

जो 'रहीम' गति दीप के, सुत सपूत के सोइ।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, गये अँधेरो होइ ॥ १३८ ॥

हाथी

'रहिमन' करि सम बल नहीं, मानत प्रभु के धाक।
दाँत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक ॥ १३९ ॥
धूर[1] उठावत सीस पर, कहु 'रहीम' किहि काज।
जिहि रज मुनि पतनी तरी, तिहि खोजत गजराज ॥ १४० ॥

निकट सम्बन्ध

नात नेह दूरी भली, लो 'रहीम' जिय जानि।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही कर पानि ॥ १४१ ॥

पाठा० १३७—१ ज्यों [र०]

१४०—१ धूर धरत नित सीस पै [रहि०, र०]
गज रज ढूँढ़त गलिन में [र० दो०]

१४१—तुलसीदासजी ने इसी भावको इस प्रकार व्यक्त किया है —
मर्याद दूरहि रहे, 'तुलसी' किये विचार।
निकट निरादर होत है, जिमि सुरसरि वर वार ॥

बेवसी की दशा

खर्च[1] बढ़ो रोजी घटी, नृपति निठर मन कीन।
'रहिमन'[2] वे नर का करें, ज्यों थोरे जल मीन ॥ १४२ ॥

सर सूखे पछी उड़ै, औरे सरन समाहिँ।
मीन दीन बिनु[1] पन्छ के, कहु 'रहीम'[2] कहँ जाहिँ ॥१४३॥

कहु 'रहीम' कैसे बनै, अनहोनी हुइ जाइ।
मिला रहै ओ ना मिलै, तासों कहा बसाइ ॥ १४४ ॥

भावी प्रबल है

जो 'रहीम' भावी[1] कतों, होति आपुने हाथ।
राम न जाते हरिन सँग, सीय[2] न रावन साथ ॥ १४५ ॥

जो 'रहीम' होती कहूँ, प्रभु गति अपने हाथ।
तौ को धौं केहि मानतो, आपु बड़ाई साथ ॥ १४६ ॥

जेहि[1] नभ सुर पजर किया, 'रहिमन' बल अनलेप।
सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेप ॥ १४७ ॥

पाठा० १४२—१ खर्च बढ़यो उद्यम घट्यो [रहि०]
२ कहु 'रहीम' कैसे जिये, थोरे जल की मीन [रहि०]
१४३—१ नेपरन की [र०]
२ कहुँ [रहि०]
१४५—१ भावी कहू होती अपने हाथ [र० दो०]
२ सिया [र० दो०]
१४७—१ महि [रहि० र०]

लिखी 'रहीम' लिलार में, भई[1] आइ कै आन।
पद कर काटि बनारसी, पहुँचे मगहर[2] थान ॥ १४८ ॥
निज कर क्रिया 'रहीम' कह, सुधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥ १४९ ॥
भावी ऐसी प्रवल है, कह 'रहीम' सव[1] जान।
भावी केहि[1] का ना दही, भावी[3] दह भगवान ॥ १५० ॥
भावी या उनमान कै, पाडव वनह 'रहीम'।
जदपि गौरि सुनि बाझ है, डरु है सम्भु अजीम ॥ १५१ ॥
ज्यों नाचति कठपूतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ 'रहीम' त्यों[1], नहीं आपुन हात ॥ १५२ ॥

सासारिक ज्ञान

जो विषया सतन तजी, मूढ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन करि, स्वान स्वादु सों खात ॥ १५३ ॥

१४८—१ हुई आन की आन [र०]
२ मगहस्थान [र० दो०]
मगर-स्थान [रहि०]
१५०—१ यह [रहि०], २ काहू [रहि०, र०, र० दो०]
३ दही पुन [र०, र० दो०]
१५२—१ ज्यों [रहि०]
१५३—कबीर ने इस भाव पर इस प्रकार कहा है —
जो विभूति साधुन तजी, तेहि विभूति लपटाय।
जोन वमन करि डारिया, स्वान स्वाद करि खाय ॥

ओ, ... /

ससि[१] कै सीतल चाँदनी, सुन्दर[२] सबहिं[३] सुहाइ।
लगै चोर चित मे लटी, घटि रहीम मन आइ॥ १५४।

सरवर के खग एक से, प्रीति[१] बाढि नहिं धीम।
पै मराल के[२] मानसर, एकै ठौर रहीम॥ १५५।

सीत हरत तम हरत नित[१], भुवन भरत नहिं चूक।
'रहिमन'[२] तेहि रविकत कहा, जो घटि लखै उलूक॥ १५६।

जद्यपि अवनि अनेक हैं, तोयवंत[१] सर ताल।
'रहिमन' मान सरोवरहिं[२], मनसा करत मराल॥ १५७।

पाठा० १५४—१ ससि की सुखद सु चाँदनी, सुदर सबे सुहाति
लगी चोर चित ज्यों लठी, घट रहीम मन काँति
[र० दो०]

पाठा० १५५—१ याढत प्रीति न धीम [रहि०]
२ को [रहि०]

१५६—१ जेहि [र० दो०],
२ कछु रहीम रवि घटि गयो
जो घटि लख्यो उलूक [र० दो०]

[१५६] वृन्द कवि का यह दोहा भी इसी भाव का है —
मूरख गुन समुझै नहीं, तो न गुनी में चूक।
कहा भयो दिन को विभो, देखै जो न उलूक॥

पाठा० १५७—१ कूपवत [रहि०], २ एके मानसर [र०]

[१५७] तुलसीदास जी ने इस भाव को निम्न प्रकार व्यक्त किया है —
यद्यपि अवनि अनेक हैं, तोय तासु रस ताल।
संतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहि मराल॥

ज्ञान

'रहिमन' विद्या बुधि नहीं, नहीं धरम जस दान।
जन्म वृथा भू पर धरेउ, पसु बिनु पूछ विषान॥ १५८॥

सबल की निर्बलता

जे 'रहीम' विधि बड़ किये, को कहि दूषण काढ़ि।
चन्द दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि॥ १५९॥

भिन्नता

भीत गिरी पाखान कें, अगरानी उहि[१] ठाम।
अब 'रहीम' धोखो यहै[२], को लागै केहि काम[३]॥ १६०॥

माँगना बुरा है

'रहिमन' वे नर मरि चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनसे पहिले वे मरे, जिन मुख निकसत नाहिं॥ १६१॥

नो० १५८—निम्न श्लोक का भाव भी यही है —
येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भार भूता, मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति॥
—भर्तृहरि शतक

१५९—तुलसीदासजी के इस दोहे का भी यही भाव है —
होहि बड़े लघु समय सहि, ता लघु सकहिं न काढ़ि।
चन्द दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि॥

१६०—१ कहु काय, २ भयो, ३ ठाय [र०]

१६१—कबीर के निम्न दोहे का भी यही भाव है —
माँगन गये सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिं।
तिन से पहिले वे मरे, होत करत जो नाहिं॥

'रहिमन' याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायनहू को भयो, बावन आँगुर गात ॥ १६२

माँगे घटत 'रहीम' पद, किती करौ बड़ काम।
तीन पैग बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥ १६३

'रहिमन' माँगत बड़ेन कै, लघुता होति अनूप।
बलि मख माँगन हरि[1] गये, धरि बावन कर रूप ॥ १६४

सच्चे मित्र की पहिचान

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाइ।
'रहिमन' सोई मीत है, भीर परे ठहराइ ॥ १६५

कह 'रहीम' संपति-सगे, बनत बहुत बहु-रीत।
बिपति कसौटी जे[1] कसे, सोई साँचे मीत ॥ १६६

जाल परे जलजात बहि, तजि मीनन कर मोह।
[1] 'रहिमन' मछरी नीर कर, तऊ न छाँड़ति छोह ॥ १६७

पाठ० १६२—वृन्द के दोहे का भी यही भाव है —

सब ते लघु है माँगिबो, या में फेर न सार।
बलि पै जाचत ही भये, बावन तन करतार ॥

१६४—१ को [रहि०]

१६४—दीनदयाल गिरि ने इस भाव पर यों कहा है —

माँगत ही में बड़ेन को, लघुता होति अनूप।
बलि-मख जाँचत ही धरै, श्रीपति हू, लघु रूप ॥

पाठ० १६६—१ जो कसै, कहिये सोई मीत [र० दो०]

१६७—१ तऊँ 'रहीम' जु मीन जब, जल को छोड़ै छोह।

[र० दो

धनि 'रहीम' गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज-तजि अत बसि, कहा भौंर को भाय ॥ १६८ ॥

प्रेमी से कुछ छिपा नहीं रहता

जेहि 'रहीम' तन मन लियो, कियो हिये विच भोन।
तासों सुख दुख कहन की, रही बात अब कौन ॥ १६९ ॥

सङ्गति

कदली सीप भुजङ्ग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन ॥ १७० ॥
'रहिमन' जो तुम कहत हौ[1], संगति ही गुन होइ।
बीच उखारी रसमरा, रस काहे ना होइ ॥ १७१ ॥
'रहिमन' नीचन संग बसि, लगत कलङ्क न काहि।
दूध[1] कलारी कर गहे, मद हि कहैं सब ताहि ॥ १७२ ॥

पा०टि० १७०—निम्न पद्यों का भी यही भाव है—
मीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगति को फल 'सूर' ॥ 'सूरदास'
तेरो फल बोल कल भापिन के स्वाति बुन्द
　　　　जहाँ जाय पर्‌यो तहाँ तैसोई समूर है।
व्याल मुख विष ज्यों, पियूष ज्यों पपीहा मुख,
　　　　सीपी मुख मोती, कदली मुख कपूर है ॥ 'देव'
१७१—१ ते [र०, र० दो०]
१७२—१ दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहि सब ताहि।
　　　　　　　　　　　　[रहि०, र०]
१७२—वृन्द ने इस भाव को यों कहा है —
निहि प्रसंग दूषन लगे, तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलारी हाथ ॥

'रहिमन'[१] ओछे सग ते, साधु बचते नाहिँ।
नैना[२] सैना करत हैं, उरज उमेठे जाहिँ ॥ १७३ ॥
'रहिमन' नीच प्रसंग ते, नित प्रति लाभ बेकार।
नीर चुरावत सम्पुटी, मारु सहत घरियार ॥ १७४ ॥
बसि कुसंग चाहत कुसल, यह 'रहीम' अपसोस[१]।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बसा परोस ॥ १७५ ॥
'रहिमन' उजली प्रकृति कहँ, नाहिं नीच कर[१] संग।
करिया बासन कर गहे, करिखा[२] लागत अङ्ग ॥ १७६ ॥

पाठा० १७३—१ कुटिलन सग रहीम कहि [रहि०, र०]
२ ज्यों नैना सैना करे [रहि०, र०]

१७३—तुलसीदास जी के दोहे का भी यही भाव है '—
'तुलसी' ओछे सग ते, साधु बॉचते नाहि।
ठकठैना सैना करैं, उरज उमेठे जाहिँ ॥

१७४—निम्न दोहों का भी यही भाव है —
ओछे नर के सग ते, निसदिन होत विकार।
नीर चुरावै सम्पुटी, मार खात घरियार ॥ 'तुलसी'
साधुन हू को होय दुख, सग गहे अति खोट।
घटी पाल जल को हरै, परै घटी पर चोट ॥
दीनदयाल गि

पाठा० १७५—१ जिय सोस [रहि०, र० दो०]
१७५—वृन्द ने इस भाव पर इस प्रकार कहा है —
दुर्जन के ससर्ग ते, सज्जन लहत कलेस।
ज्यों दसमुख अपराध तें, बन्धन लह्यो जलेस ॥
पाठा० १७६—१ का [र०] को [रहि०], २ कालिख [रहि०

जो[1] 'रहीम' उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपिटे रहत भुजङ्ग ॥ १७७ ॥
मुकुता कर करपूर कर, चातक जीवन[1] जोय।
एतो बडो 'रहीम' जल, व्याल[2]-बदन विष होय ॥ १७८ ॥
ओछे को सतसंग, 'रहिमन' तजहु अँगार ज्यों।
तातो जारै अङ्ग, सीरे पै कारो करै ॥ १७९ ॥
कहु 'रहीम' कैसे निभै, केर बेर को संग।
वे[1] डोलत रस आपुने, उनके फाटत अङ्ग ॥ १८० ॥
पुरुष पूजइ देवरा, तिय पूजइ रघुनाथ।
कह[1] 'रहीम' कैसे बने, [2]पडो बैल को साथ ॥ १८१ ॥
'रहिमन' जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर भई, जूती खात कपाल ॥ १८२ ॥

पाठा० १७७—१ 'रहिमन' उत्तम प्रकृति को [र० दो०]

१७७—वृन्द ने इस भाव को यों कहा है —
सुजन कुसंगति संग तें, सज्जनता न तजन्त।
ज्यों भुजङ्ग गन संग तउ, चन्दन विष न धरन्त ॥

१७८—१ नृप हर सोय०[र० दो०], २ कुयल परे [र० दो०]

१७९—अहमद के दोहों में भी यह सोरठा पाया जाता है —
ओछे को संग साथ, 'अहमद' तजे अँगार ज्यों।
तातो जारै हाथ, सीरे पै कारो करै।

पाठा० १८०—१ वे तो डोलत सहज ही [र० नी०]

१८१—१ कहँ 'रहीम' सोउन बनै [रहि०]
२ भैंस [र०, र० दो०]

विपत्ति

'रहिमन' विपदा हू भली, जो थोरे दिन होइ।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोइ॥ १८३॥
अब[1] 'रहीम' चुप करि रहउ, समुझि दिनन कर फेर।
जब दिन नीके आइ हैं, बनत न लगिहै देर॥ १८४॥
दुरदिन परे 'रहीम' कह, दुरथल जैयत भागि।
ठाढे हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि॥ १८५॥
समय परे ओछे बचन, सब के सहउ[1] 'रहीम'।
सभा दुसासन पट गहे, गदा रहे[2] गहि भीम॥ १८६॥
दुरदिन परे 'रहीम' कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं चित हानि कर, जो न होय हित हानि॥ १८७
जो 'रहीम' दीपक दसा तिय राखति पट ओट।
समय परे ते होत है, वाही पट की चोट॥ १८८।
दुरदिन परे 'रहीम' कह, बडेन किये घटि काज।
पाँच रूप पांडव भये, रथ-वाहक नलराज॥ १८९।
असमय परे 'रहीम' कह, माँग जात तजि लाज।
ज्यों लछमन माँगन गये, पारासर के नाज॥ १९०॥

पाठा० १८४—१ 'रहिमन' चुप ह्वे बैठिये, देखि '
[रहि०, र०]

१८६—१ सहे [रहि०], २ लिये रहे [रहि०]

१८८—इसका पाठ इस प्रकार भी पाया जाता है —
जेहि अचल दीपक दुर्यो, हत्यो सो ताही गात।
'रहिमन' असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात॥ [र०

विपति भये धन ना रहे, होय[1] जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं, जिमि 'रहीम' भे भोर ॥ १९१ ॥
'रहिमन' असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाइ।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरे देत बताइ ॥ १९२ ॥
चित्रकूट[1] में बसि रहे, 'रहिमन' अवधनरेस।
जापर बिपदा परति है, सो आवत यहि देस ॥ १९३ ॥
[1]कोउ 'रहीम' जनि काहु के, द्वार गये पछिताइ।
सपति के सब जात हैं, विपति सबै लै जाइ[2] ॥ १९४ ॥

संतोष

[1]जैसी परै सो सहि रहै, कह 'रहीम' यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत घाम ओ मेह ॥ १९५ ॥
काह कामरी पामरी, जाड गये से काज।
'रहिमन' भूख बुताइये, कैस्यउ मिलै जु नाज ॥ १९६ ॥

निरभिमान

देनहार कोउ ओर है, भेजत सो दिन रेन।
लोग भरम हम पै धरैं, या ते नीचे नेन ॥ १९७ ॥

पाठा० १९१—१ रहे [रहि०]
१९३—१ आये राम 'रहीम' कह, किये मुनिन को भेस।
जब जाको विपत्त परै, सो कढ़ती सुव देस ॥ [र०]
१९४—१ को रहीम पर द्वार पर जात न जिय पछतात [र०]
२ जात [र०]
१९५—१ धरती कैसी रीति है, सीत धूप घन मेह।
जैसी परै सु सहि रहै, त्यों 'रहीम' यह देह ॥
[र० दो०]

स्वार्थी जगत

जब लग वित्त न आपने, तब लग मित्र न कोइ।
'रहिमन' अम्बुज अम्बु बिनु, रवि[1] ताकर रिपु होइ ॥ १९८ ॥
स्वारथ रचत[1] 'रहीम' कह[2], औगुन हू जग माहिं।
बड़े बड़े बैठे लखहु, पथ रथ कूबर छाहिं ॥ १९९ ॥

बड़ों की महिमा

जे[1] गरीब पर हित करें, ते 'रहीम' बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥ २०० ॥
जो[1] बड़ेन कहँ लघु कहें, नहिं 'रहीम' घटि जाहिं।
गिरधर मुरली धर कहे, कछु[2] दुख मानत नाहिं ॥ २०१ ॥
'रहिमन' कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गरब कर लेस।
भार धरे संसार कर, तऊ कहावत सेस ॥ २०२ ॥
बड़े बड़ाई ना करें, बड़े[1] न बोलें बोल।
'रहिमन' हीरा कब कहै, लाख टका है मोल ॥ २०३ ॥

पाठा० १९८—१ रवि नाहिन हित होइ [रहि०]
तुलसीदासजी ने इस भाव पर यों कहा है —
आपन छोड़ो साथ जब, ता दिन हितू न कोय।
'तुलसी' अम्बुज अम्बु बिनु, तरनि तासु-रिपु होय ॥
१९९—१ रचत [रहि०] २ सब [रहि०, र०]
२००—१ जो गरीब को आदरै, सो [र० दो०]
२०१—१ बड़ेन सो कोऊ घटि कहै, नहिं वे कछु घटि जाहिं।
[र० दो०]
२ कछु 'रहीम' दुख नाहिं [र० दो०]
२०३—१ बड़ो [रहि०]

यों 'रहीम' सुख दुख सहत, बड़े लोग सह[1] साँति।
उवत चन्द जेहि भाँति सों, अथवत ताही[2] भाँति॥ २०४॥
ऊगत जाही किरन सों, अथवत ताही काँति।
त्यों 'रहीम' सुख दुख सबै[1], बढ़त एकहि भाँति॥ २०५॥
यों 'रहीम' गति बड़ेन के, ज्यों तुरग-व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार॥ २०६॥
बड़े दीन के दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि॥ २०७॥
'रहिमन' रिस सहि तजत नहिं, बड़े प्रीति की पौरि।
मूकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरि॥ २०८॥
बड़े[1] बड़ाई ना तजैं, लघु 'रहीम' इतराइ।
राइ करौंदा होत है, कटहर होत न राइ॥ २०९॥
होय[1] न जाकर छाँह ढिग, फल 'रहीम' अति दूर।
बाढ़ेहु[2] सो बिन काज ही, जैसे तार खजूर॥ २१०॥

पाठ० २०४—सह [रहि०, र०], २ वाही [र०]
२०५—१ सबै, बढ़त एक ही भाँति। [रहि०]
२०९—१ जो 'रहीम' ओछो बढ़ै, गली गली इतराइ। [र० दो०]
२१०—१ छाँह तो वाकी कठिन है, २ बाढ़यो सो बिन काज को, [र० दो०]

कबीर ने इस भाव पर यों कहा है —
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥

'रहिमन' छोटे नरन से, होत बड़े नहिं काम।
मढ़ो दमामा जात[1] है, कहुँ[2] चूहे के चाम॥ २११॥
अनुचित उचित 'रहीम' लघु[1], करहिं[2] बड़ेन के जोर।
ज्यों ससि के संजोग[3] ते, पचवत आँगि चकोर॥ २१२॥
होत कृपा जो बड़ेन के, सो कदाचि घटि जाइ।
तो 'रहीम'[1] मरिबो भलो, यह दुख सहयो न जाइ॥ २१३॥

सूक्तियाँ

'रहिमन' सीधी[1] चाल सों, प्यादा होत वजीर।
फरजी साह न हुइ[2] सके, गति टेढ़ी तासीर॥ २१४॥
'रहिमन' बिगरी आदि के, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकास लौं, तऊ बावनै नाम॥ २१५॥
छिमा बड़ेन कहँ चाहिये, छोटेन कहँ उत्पात।
का 'रहीम' हरिकर घटेउ, जो भृगु मारी लात॥ २१६॥

पाठा० २११—१ ना बनें, २ सो [रहि०]
तुलसीदासजी का निम्न दोहा भी इसी भाव का है —
'तुलसी' ओछे नरन ते, होत बड़े नहिं काम।
मढ़त नगारा नहिं बनै, सो चूहे के चाम॥
२१२—१ कहि, २ करत, ३ रस भोगतें [र० दो०]
दीनदयाल गिरि ने इस भाव पर यों कहा है —
लहि कें बल बलबीर को, निबल बली संसार।
ज्यों चकोर बल चन्द के, चाबत निचें अँगार॥
२१४—१ सीधे, २ हो सके [रहि०]
[२१६] वृन्द का यह दोहा भी इसी भाव का है —
नीति अनीति बड़े सहैं, रिसभरि देत न गारि।
भृगु उर दीनी लात की, कीनी हरि मनुहारि॥

'छोटेन सों सोहैं बड़े, कह 'रहीम' यह रेख[2]।
सहसन के हय बाँधियत, लै दमरी[3] की मेख॥ २१७
'रहिमन' देखि बड़ेन कहँ, लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि॥ २१८॥
गुरुता फबइ 'रहीम' कह, फबि आई है जाहि।
उरपर कुच नीके लगैं, अनत बतौरी आहि॥ २१९॥
'रहिमन'[1] यहि संसार में, सब दुख मिलत अगोट[2]।
जैसे फूटे नरद के, परत दुहुँन सिर चोट॥ २२०॥
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करै किन कोइ।
'रहिमन' बिगरे[1] दूध कहँ, मथे न माखन होइ॥ २२१॥
'रहिमन' निज मन के बिथा, मन ही राखहु गोइ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोइ॥ २२२॥
'रहिमन' खोटी आदि के, सो परिनाम लखाइ।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराइ॥ २२३॥

पाठा० २१७—१ बड़े सु छोटेन सों बँध्यो, २ लेख, ३ कौड़ी
[र० दो०]

वृन्द ने इस भाव पर निम्न प्रकार कहा है —

छोटे नर ते रहत हैं, सोभायुत सरताज।
निरमल राखै चाँदनी, जैसे पायन्दाज॥

२२०—१ जब लगि जीवन जगत में, सुख दुख मिलत अगोट।
'रहिमन' फूटे गोट ज्यों, परत दुहुँन सिर चोट॥
[रहि०]

२ सुख [र०, र० दो०]
२२१—१ फटे [रहि०]

अरज गरज माने नहीं, 'रहिमन' ये जन चारि।
रिनियाँ राजा माँगता, काम आतुरी नारि ॥ २२४ ॥
'रहिमन' जहँ रहिबो चहै, कहै वाहि जो[1] भाव।
जो वासर कहँ निसि कहै, तो कचपची दिखाव ॥ २२५ ॥
यह 'रहीम' माने नहीं, दिल से नयो[1] जो होइ।
चीता[2] चोर कमान के, नये ते औगुन होइ ॥ २२६ ॥
जो 'रहीम' ओछो[1] बढ़ै, तौ[2] अति ही इतराइ।
प्यादे[3] सों फरजी भयो, टेढ़ो[3] टेढ़ो जाइ ॥ २२७ ॥
'रहिमन' घरिया रहँट के, त्यों ओछे के डीठि।
रीतिहिँ सम्मुख होति है, भरी दिखावे पीठि ॥ २२८ ॥
'रहिमन' रिस कहँ छाड़ि कै, करहु गरीबी भेस।
मीठे बोलहु नै चलहु, सबै तुम्हारो देस ॥ २२९ ॥
जो 'रहीम' पगतर परै[1], रगरि नाक औ सीस।
निठुरा आगे रोइबो, आँसु डारिबो[2] खीस ॥ २३० ॥
साधु सराहै साधुता, जती जोखिता जान।
'रहिमन' साँचे सूर कर, बैरी करै बखान ॥ २३१ ॥
ये 'रहीम' फीके दुओ, महाजानि सतापु।
ज्यों तिय आपन कुच गहे, आप बड़ाई आपु ॥ २३२ ॥

पाठा० २२५—१ के दाव [रहि०, र० दो]
२२६—१ नया [रहि० र०], २ चिता जोर कमान के [र०]
एक अन्य कवि ने इसी भाव को यों कहा है —
नवन नवन बहु अंतरा, नवन नवन बहु बान।
ये तीनो बहुते नवें, चीता चोर कमान ॥
२२७—१ छोटो, २ बढत करन उत्पात, ३ तिरछो तिरछो जात
२३०—१ परयो [र० दो०], परो [रहि०] २ गारियो [रहि०,]

अमृत ऐसे वचन में, 'रहिमन' रिस[1] की गाँस।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस[2] बाँस की फाँस॥ २३३॥
रीति प्रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत।
'रहिमन' याही जनम के, बहुरि न संगति होत॥ २३४॥
'रहिमन' चित्त अधर्मकर, जात[1] न लागै बार।
चोरी करि होरी रची, भई छिनक में छार॥ २३५॥
जो घर ही मे घुसि रहे, कदली सुपत सुडील।
तो 'रहीम' तिन ते भले, पथ के अपत करील॥ २३६॥
करमहीन 'रहिमन' लखहु, धँसो बड़े घर चोर।
चिन्तत ही बड़ लाभ के, जागत ह्वै गा भोर॥ २३७॥
'रहिमन' जगजीवन बड़े, काहु[1] न देखे नैन।
जाइ दसानन अछत ही, कपि लागे गढ़[2] लैन॥ २३८॥
जानि[1] अनीती जे करे, जागत ही रह सोइ।
ताहि सिखाइ जगाइबो, 'रहिमन' उचित न होइ॥ २३९॥

पाठा० २३३—१ विप, २ मनिक [र० दो०]
२३५—१ जरत [रहि०, र० ने०]
२३८—१ काहु, २ गय [रहि०, र० ने०]
२३९—१ अनकीन्हीं बातैं करै, सोवत जागै जोय।
[रहि०, र० ने०]

निम्न दोहे का भाव भी यही है —
समुझि सुनीति कुनीति रत, जागत ही रह सोय।
उपदेसिबो जगाइबो, 'तुलसी' उचित न होय॥
'तुलसी'

जानि बूझ अजुगत करै, तासों कहा बसाय।
जागत ही सोवत रहै, तेहि को सके जगाय॥ 'वृन्द'

उरग तुरंग नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
'रहिमन' इन्हें सँभारिये, पलटत लगे न वार॥ २४०
'रहिमन' ओछे[1] नरन ते[2], तजहु बैर औ प्रीति।
काटे चाटे स्वान के, दुहूँ भाँति विपरीति॥ २४१
माह मास कर भिनुसारा, मीन सुखी नहि सार।
ज्यों 'रहीम' जग ना जियइ, बिछुरे आपन ठौर॥ २४२
माह मास लहि[1] टेसुआ, मीन परे थल और[2]।
त्यों 'रहीम' जग जानिये, छूटे आपन ठौर॥ २४३
करत निपुनई गुन बिना, 'रहिमन' निगुन[1] हुजूर।
मानहुँ टेरत बिटप चढि, यहि प्रकार हम क्रूर॥ २४४
गरज आपनी आप[1] सों, 'रहिमन' कहीन जाइ।
जैसे कुल के कुल बधू, पर घर जात लजाइ॥ २४५
ससि सुकोच[1] साहस सलिल, मान[2] सनेह 'रहीम'।
बढत बढत बढ़ि जात हैं, घटत घटत घटि सीम॥ २४६

---

[२४०] तुलसीदास जी के निम्न दोहे का भी यही भाव है —
उरग तुरँग नारी नृपति, नर नीचो हथिआर।
'तुलसी' परखत रहब नित, नहहि न पलटत बार॥

पाठा० २४१—१ खोटे जनन [र० दो०]
२ सो, बैर भयो ना प्रीति [रहि०]
२४३—१ लहि टेसुआ [र० दो०], २ भार [र०]
२४४—१ गुनी [र०, र० दो०], निपुन [रहि०]
२४५—१ काहु [र० दो०]
२४६—१ सुकेस [रहि०], २ साजि [र० दो०]

'रहिमन' यह[1] तन सूप है, लीजे जगत पछोर।
हलुकन कहँ उड़ि जान[2] दे, गरुये राखि बटोर॥ २४७॥
टूटे सुजन मनाइये, जो टूटै सौ बार।
'रहिमन' फिरि फिरि पोहिये, टूटे मुकुताहार॥ २४८॥
अधम बचन ते[1] को फल्यो, बैठि ताड़ के छाँहिं।
'रहिमन' काम न आवहीं[2], ये नीरस जग माहिं॥ २४९॥
हित[1] अनहित 'रहिमन' करै, जाकै जहाँ बिसात।
ना[2] यह रहै न वह रहै, रहै कहन कहँ बात॥ २५०॥
अनुचित बचन न मानिये, जदपि गुराइसि गाढ़ि।
है 'रहीम' रघुनाथ ते, सुजस भरत कर बाढ़ि॥ २५१॥
सबै कहावैं लसकरी, जो[1] लसकर कहँ जाँइ।
'रहिमन'[2] सेल्ह जोई सहैं, सोइ जगीरैं खाँइ॥ २५२॥
पात पात कर सींचियो, बरी बरी कर लौन।
'रहिमन' ऐसी बुद्धि ते[1], काज सरैगो कौन॥ २५३॥

पाठा० २४७—१ या [रहि०], २ जातु है [र० दो०]
२४९—१ के [रहि०], २ आय हं [रहि०]
२५०—१ हित 'रहीम' इतऊ करे [र०, रहि०],
इतऊ की जगह कितऊ [र० दो०]
२ ना की जगह 'नहि' [रहि०] और 'न' [र०]
और 'नैहर रहै न घरु रहै [र० दो०]
२५२—१ वीर कोउ कहि जाय [र० दो०]
२ मेल सहाके जो सहं [र०]
२५३—१ को, कहौ सरंगो कान [रहि०]

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाइ।
'रहिमन' सींचै[1] मूल काँ, फूलइ फलइ अघाइ॥ २५४
खैर खून खाँसी खुशी, बैर प्रीति मद-पान।
'रहिमन' दावे ना दबै, जानत सकल जहान॥ २५५
'रहिमन' अब वे बिरछ कहँ, जिनकै छाँह गँभीर।
बागन बिच बिच देखियत, सेहुँड़ कुटज[1] करीर॥ २५६
'रहिमन' आटा के लगे, बाजत है दिनरात।
घिउ सक्कर जे खात हैं, तिनके कहा बिसात॥ २५७
यह 'रहीम' निज[1] संग लै, जनमत जगत न कोइ।
बैर प्रीति अभ्यास जस, होत होत ही होइ॥ २५८
गुन ते लेत 'रहीम' जन[1], सलिल कूप तें काढि।
कूपहुँ[2] ते कहुँ होत है, मन काहू कर बाढि॥ २५९

पाठा० २५४—१ मूलहि सींचिबो [रहि०]
कबीर के दोहों में भी यह दोहा पाया जाता है
केवल उसमें 'रहिमन' की जगह 'जो तू' है।
[२५५] निम्न दोहा का भाव भी यही है —
धन गुन जोबन रूप मद, दुरै न एका संच।
ज्यों हाँसी खाँसी बहुरि, रोके रहत न रंच॥ —
इश्क मुश्क खाँसी खुनस, खैर खून मद-पान।
चतुर छिपावत हैं सही, आप परत हैं जान॥ 'कोई क
२५६—१ कुज [र० दो०], कज [र०, रहि०]
२५८—१ सग [र० दो०]
२५९—१ कहि [र० दो०]
२ काहू को मन होयगो, कहा कूप ते बाढि। [र० दो

'रहिमन' तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचान।
परवस परे परोस बसि, परे मामिला जानि ॥ २६० ॥
'रहिमन' यहि संसार में, सब सों मिलिये धाइ।
ना जाने केहि रूप में, नारायन मिल जाइ ॥ २६१ ॥

विवाह-निषेध

'रहिमन' ब्याह बियाधि है, सकहु तो जाहु बचाइ।
पाइन बेरी परत है, ढोल बजाइ बजाइ ॥ २६२ ॥

अनुभव

अब 'रहीम' मुसकिल परी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलें न राम ॥ २६३ ॥
थोथे बादर क्वाँर के, ज्यों 'रहीम' घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करें पाछिली बात ॥ २६४ ॥

परिशिष्ट

दोहे की प्रशंसा

दीरघ दोहा अर्थ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों 'रहीम' नट कुंडली, सिमिटि कूदि कढि जाहिं ॥ २६५ ॥

[२६२] निम्न दोहे का भी यही भाव है —

ऊले फूले वे फिरें, जिन को आयो ब्याउ।
'तुलसी' गाय बजाय के, देत काठ में पाउ ॥

'तुलसी'

रूप कथानक[1] चारु[2] पद[3], किंचन[4] दोहा लाल।
ज्यों ज्यों निरखत अलुप[5] त्यों, मोल 'रहीम' विसाल ॥ २६६

तान

विधना यह जिय जानि कै, सेसहि दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलिहैं, तानसेन के तान ॥ २६७

डर

घर डर गुरु डर वंस डर, डर लज्जा डर मान।
डर जेहि के जिह में बसै, तिन पाया रहिमान ॥ २६८

पाठा० २६६—१ कथायक [र० दो०], कथा पद [रहि०]
२ चारि [र०, र० दो०]
३ पद [रहि०]
४ कचन [र०, रहि०, र० दो०]
५ सूक्ष्मगति [रहि०]

२६८—इस दोहे का पाठ इस प्रकार भी है —
'रहिमन' जा डर निसि परै, ता दिन डर सिर कोय।
पल पल करके लागते, देखु कहा धौं होय ॥
[रहि०]

दूसरा पाठान्तर—
डर वारिस डर परम गुरु डर करनी में सार।
खोजी डरै सो ऊबरै गाफिल पावै मार ॥



बरवै नायिका-भेद

दोहा

कविन कह्यो दोहा कह्यो, तुल्यो न छप्प छन्द।
बिरच्यो यहै बिचारि के, यह बरवे रस-छन्द[1] ॥ १ ॥
बेधक अनियारे यहे, यह बरवे के बान।
सुनत जाहि चित चाव पै, समुझै चतुर सुजान ॥ २ ॥

मंगलाचरण

बन्दौं देवि सरदवा, पद कर जोरि।
बरनत काव्य बरवजा, लगइ न खोरि ॥ १ ॥

जिस सुंदर स्त्री को देखते ही हृदय में शृङ्गार-रस का उदय हो
'नायिका' कहते हैं। यथा —

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥ २ ॥

स्वाभाविक धर्मानुसार नायिकाओं के तीन भेद माने गये हैं — १
कीया, २ परकीया और ३ गणिका।

स्वकीया

लज्जाशील और पति से प्रेम करनेवाली नायिका को 'स्वकीया'
ते हैं। यथा —

---

१० दोहा न० १—१ रस-कन्द (ह०)
ना (१) दोहा न० २ और बरवा न० १ हस्तलिखित में अधिक हैं।
(२) बरवा नं० २ 'रहि०' और 'र०' में मुग्धा के उदाहरण में
ा गया है।

रहति नयन के कोरवा, चितवनि छाय।
चलत न पग पैजनियाँ, मग अहटाय ॥ ३॥

स्वकीया के तीन भेद होते हैं —१ मुग्धा, २ मध्या और ३ प्रौढ़ा।

मुग्धा

जिसके अङ्गयष्टि में यौवनागम के चिन्ह प्रकट होने लगे हों उसे 'मुग्धा' कहते हैं। यथा —

लागेउ आनि नवेलियहिं, मनसिज बान।
उकसन लाग उरोजवा, दृग तिरछान ॥ ४ ॥

मुग्धा के दो भेद होते हैं —१ अज्ञात यौवना और २ ज्ञात यौवना।

अज्ञात-यौवना

जिसे यौवनागम का ज्ञान न हो उसे 'अज्ञातयौवना' कहते हैं। यथा —

कउन रोग धौं[1] छतियाँ, उकसेउ[2] आइ।
दुखि दुखि उठइ करेजवा, लगि जनु जाइ[3] ॥ ५ ॥

ज्ञात यौवना

जिसे यौवनागम का ज्ञान हो गया हो उसे 'ज्ञात यौवना' कहते हैं यथा —

औचक आइ जोवनवा, मोहिं दुख दीन्ह।
छुटिगा संग गोइयवाँ, नहिं भल कीन्ह ॥ ६ ॥

बरवा सं० ३ 'रहि०' और 'र०' में मध्या के उदाहरण में दिया गया है

पाठा० ५—१ दुहुँ, २ उपजेउ [रहि०, र०]
३ लाय [ह०]

ज्ञात-यौवना के अवस्था-भेद से दो रूप माने जाते हैं —
क—नवोढा और ख—विश्रब्ध नवोढा।

नवोढा

भय और लाज के कारण जो पति से दूर भागती हो उसे नवोढा कहते हैं। यथा —

पहिरति चूनि चुनरिया, भूषन भाव।
नैननि देति कजरवा, फूलनि चाव॥ ७॥

विश्रब्ध नवोढा

पति के प्रति जो कुछ कुछ अनुराग और विश्वास दिखाने लगी हो उसे 'विश्रब्ध नवोढा' कहते हैं यथा —

जघन जोरति गोरिया, करति कठोर।
छुअन न पावइ पियवा, कहुँ कुच कोर॥ ८॥

मध्या

जिस नायिका में लज्जा और काम समान मात्रा में पाये जाते हों उसे 'मध्या' कहते हैं। यथा —

निसु दिन चाहति चाहन, श्री ब्रजराज।
लाज जोरावरि हुइ बस, करति अकाज॥ ९॥

प्रौढा

पति से अनुराग करने वाली नायिका को 'प्रौढा' कहते हैं। यथा —

मोरहि बोलि कोइलिया, बढवति ताप।
[1]घरी[1] एक घरि !! अलिया, रहु चुपचाप॥ १०॥

पाठा० १०—१ घरि घरि एक घरिअवा [रहि०, र०]

परकीया

पर पुरुष से प्रेम रखने वाली नायिका को 'परकीया' कहते हैं यथा —

सुनि[1] धुनि कान्ह मुरलिया , रागन भेद ।
गइल न छाँड़ति गोरिया , गनति न खेद ॥ ११ ॥

परकीया के दो भेद हैं —१—ऊढ़ा और २—अनूढ़ा ।

ऊढा

नायिका ब्याही किसी से हो और प्रीति किसी दूसरे से रखती हो उसे 'ऊढा' कहते हैं । यथा —

निसु दिन सासु ननदिया , मुहिं घर घेर[1] ।
सुनन[2] न देत मुरलिया , ना धुनि[3] टेर ॥ १२ ॥

अनूढ़ा

जो किसी पुरुष से प्रेम करती हो पर अविवाहिता हो उसे 'अनूढ़ा' कहते हैं । यथा —

मोहिं वर जोग कन्हैया , लागउँ पाय ।
तुहुँ कुल पूज देवतवा , होहु सहाय ॥ १३ ॥

परकीया के और भी छ भेद होते हैं —(१) गुप्ता, (२) विदग्धा, (३) लक्षिता, (४) कुलटा, (५) मुदिता और (६) अनुशयना ।

गुप्ता

अन्य पुरुष की प्रीति को छिपानेवाली स्त्री 'गुप्ता' कहलाती है। इसके तीन भेद होते हैं —(१) भूत सुरति संगोपना, (२) वर्तमान सुरति संगोपना और (३) भविष्य-सुरति संगोपना ।

पाठ : ११—१ सुनि सुनि कान मुरलिया [रहि०, र०]
१२—१ हेर, २ सुनइ, ३ मधुरी [रहि०, र०]
बरवा न० १२ 'र०' म परकीया के उदाहरण में लिया गया है ।

भूत-सुरति-संगोपना

पीती हुई रति को छिपानेवाली नायिका 'भूत-सुरति-संगोपना' कहलाती है। यथा —

चूनत फूल गुलववा, डार कटील।
टुटिगा वंद अँगियवा, फट पट नील ॥ १४ ॥
अव[1] नहिँ तोहिँ पढ़ावउँ, सुगना मार।
परिगा दाग अधरवा, चोंच चुटार ॥ १५ ॥

वर्तमान-सुरति-संगोपना

वर्तमान समय की रति को छिपानेवाली नायिका 'वर्तमान-सुरति संगोपना' कहलाती है। यथा —

मुहिँ तुहिँ हरवर आवत, भा पथ-खेद।
रहि रहि लेत उससवा, वहत प्रसेद ॥ १६ ॥

भविष्य-सुरति-संगोपना

भावी रति को छिपानेवाली नायिका को 'भविष्य-सुरति-संगोपना' कहते हैं। यथा —

जइहौं चुनन कुसुमिआँ, खेत वड़ि दूर।
नौरिया[1] केरि छोहरिया[2], मो[3] संग कूर ॥ १७ ॥

पाठ० १५—आयेमि यवनेस औरजा [रहि०, र०]
यरवा स० १६ 'र०' म अन्य-सम्भोग दु खिता के उदाहरण में दिया गया है।
पाठ० १७—१ नाआ [रहि०, र०], २—छोकरिया [र०]
३—मुहि, मोहि [रहि०, र०]

विदग्धा

विदग्धा नायिका के दो भेद होते हैं —(१) वचन विदग्धा आ (२) क्रिया-विदग्धा।

वचन-विदग्धा

अन्य पुरुष के प्रति वाक्य चातुरी द्वारा प्रेम प्रकट करनेवाली नायिका को 'वचन विदग्धा' कहते हैं। यथा —

होइ आइ कारि बदरिया, बरखत पाथ।
जइयो घन अमरैया, सग न साथ ॥ १८ ॥

क्रिया-विदग्धा

अन्य पुरुष के प्रति क्रिया-चातुरी द्वारा प्रेम प्रकट करनेवाली नायि को 'क्रिया-विदग्धा' कहते हैं। यथा —

तोरेसि नाक नथुनिया, मित हित नीक।
कहेसि नाक पहिरावहु, चित दै सींक ॥ १९ ॥
बाहेर लै के दियवा, बारन जाइ।
सासु ननद ढिग पहुँचत, देति बुताइ ॥ २० ॥

बरवा स० १८ 'रहि०' और 'र०' में सुरति सगोपना के उदाह में दिया गया है। पाठ इस प्रकार है —

होइ कत आइ बदरिया, बरसहि पाथ।
जैहौ घन अमरैया, सुगना साथ ॥

बरवा स० १९ 'रहि०' और 'र०' मे 'वचन विदग्धा' के उदाह में दिया गया है। पाठ इस प्रकार है —

तनिक सी नाक नथुनियाँ, मित हित नीक।
कहति नाक पहिरावहु, चित द सींक ॥

लक्षिता

जिस नायिका का अन्य पुरुष सम्बन्धी प्रेम किसी चिन्ह द्वारा प्रकट होता हो उसे 'लक्षिता' कहते हैं। यथा —

आज नयन के कोरवा, औरै[1] भाँति।
नागर नेह नवेलियहिं[2], मूँदि[3] न जाति ॥ २१ ॥

कुलटा

अनेक पुरुषों से प्रेम रखनेवाली नायिका को 'कुलटा' कहते हैं। यथा —

जस मदमातल हथिया, हुमकत जाइ।
चितवति छैल[1] तरुनियाँ, मुँह मुसुकाइ ॥ २२ ॥
चितवति ऊँचि अटरिया, दहिने बाम।
लाखन लखत बिदेसिया, हुइ बस काम ॥ २३ ॥

मुदिता

जो नायिका अपने अनुकूल समय या कार्य को देखकर मुदितमना हो उसे 'मुदिता' कहते हैं। यथा —

जइहौं कान्ह[1] नेवतवा, भा दुख दून।
बह[2] करै रखवरिया, है[3] घर सून ॥ २४ ॥

पाठ०—२१—१ कजरा, २—नवेलिया, ३—मुंदिने [रहि०, र०]
२२—१ जाति [रहि०, र०]
बरवा सं० २३ 'रहि०' और 'र०' में मुदिता के उदाहरण म दिया गया है। पाठ इस प्रकार है —
चितवति ऊँचि अटरिया, दहिने बाम।
लाखन लखत विदियवा, लरी सकाम ॥
२४—१ काए, २—गाँव, ३—सम [रहि०, र०]

नेवतहिँ गइल ननदिया, मैके सास।
दुलहिन तोरि खबरिया, ओ[1] पिय पास॥ २५॥

अनुशयना

संकेत-स्थान नष्ट हो जाने के कारण दुखिता नायिका को 'अनुशयना' कहते हैं। इसके तीन भेद हैं —

(१) प्रथम अनुशयना (संकेत विघट्टना), (२) द्वितीय अनुशयना (भावी संकेत नष्टा) और (३) तृतीय अनुशयना (रमण गमना)।

प्रथम अनुशयना

संकेत-स्थान के नष्ट हो जाने से दुखी नायिका को 'प्रथम अनुशयना' कहते हैं। यथा —

जमुनातीर तरुनिअहिँ, लगि भा सूल।
झरिगा कुञ्ज[1] बेइलिया, फुलत न फूल॥ २६॥
ग्रीपम दहत[1] दवरिया, कुञ्ज कुटीर।
तिमि तिमि तकत तरुनिअहिँ, बाढ़ति[2] पीर॥ २७॥

पाठा० २५—१ आवै आसु [रहि०, र०]

स० २६ और २७ के बरवै 'रहि०' और 'र०' में 'द्वितीय अनुशयना' के उदाहरण में दिये गये हैं।

पाठा० २६—१ रूख।

पाठा० २७—१ दवत, २—बाढी [रहि०, र०]

बरवा न० २८ और २९ 'रहि०' और 'र०' में प्रथम 'अनुशयना' के उदाहरण में दिये गये हैं।

द्वितीय अनुशयना

भावी संकेत-स्थान की चिन्ता में दुखित होनेवाली नायिका को 'द्वितीय अनुशयना' कहते हैं। यथा —

धीरज धरु किन गोरिया, करि अनुराग।
जात जहाँ पिय-देसवा, घन बन बाग ॥ २८ ॥
जनि मरु रोय दुलहिया, करि मन ऊन।
सघन कुञ्ज ससुररिया, औ घर सून ॥ २९ ॥

तृतीय अनुशयना

जो नायिका सकेत-स्थान में समय पर पहुँचने से चूक जाने के कारण दुखी हो उसे 'तृतीय अनुशयना' कहते हैं। यथा —

मितवा करत बँसुरिया, सुमन सपात।
फिरि फिरि तकत तरुनिया, मन पछतात ॥ ३० ॥
मित उतते फिरि आयेउ, देखि[1] अराम।
मैं न गई अमरइया, लहेउ न काम ॥ ३१ ॥

गणिका

केवल धन के लिये अनुराग करनेवाली नायिका को 'गणिका' कहते हैं। यथा —

लखि लखि धनिक नयकवा, बनवति भेख।
रहि गइ हेरि अरसिया, कजरा रेख ॥ ३२ ॥

उपर्युक्त नायिकाओं के तीन भेद और होते हैं —

(१) अन्य-सुरति-दुःखिता, (२) मानिनी, और (३) वक्रोक्ति गर्विता।

पाठा० ३१—१ देखु न राम [रहि०] आर लहेउ न राम [र०]

अन्य-सुरति-दु खिता

जो नायिका प्रीतम की प्रीति के दूसरे म चिन्ह देखकर दुखित होती है वह 'अन्य-सुरति-दु खिता' कहलाती है। यथा —

मैं पठई जेहि कजवा, आयसि साधि।
छुटिगा सीस जुरवना, दिढ करि बाँधि ॥ ३३ ॥

वक्रोक्ति-गर्विता

इसके दो भेद हैं —(१) प्रेम-गर्विता और (२) रूप-गर्विता।

प्रेम-गर्विता

प्रियतम के प्रेम का गर्व करनेवाली नायिका को 'प्रेम-गर्विता' कहते हैं। यथा —

आपुहि देत जवकवा[1], गूँधत हार।
चुनि पहिरावइ चुनरिया, प्रान अधार ॥ ३४ ॥
अउरन पाँय जवकवा, नाइन दीन्ह।
मोहिँ पग आगर गोरिया, आनन कीन्ह ॥ ३५ ॥

रूप-गर्विता

जिस नायिका को अपने रूप का गर्व हो उसे 'रूप-गर्विता' कहते हैं। यथा —

बरवा स० ३३ 'रहि०' में 'वर्तमान-सुरति सगोपना' के उदाहरण में दिया गया है। पाठ इस प्रकार है —

मैं पठयेउ जिहि कमवाँ, आयेसि साध।
छुटिगा सीस को जुरवा, कसि के बाँधि॥

'र०' में भी उपर्युक्त ही पाठ दिया गया है पर उदाहरण अन्य सुरति-दु खिता का ही माना गया है।

पाठा० ३४—१ कजरवा [ह०]

खीन मलिन बिख भइया, आगुन तीन।
मोहि कहि चन्द-चन्दनिया, पिय मति हीन ॥ ३६ ॥
रातुल[1] भएसि मुगउआ, निरस पखान।
यह मधु भरल अधरवा, करसि समान[2] ॥ ३७ ॥

अवस्था-भेद के अनुसार स्वकीया, परकीया और गणिका के दस-दस भेद होते हैं —

(१) प्रोषित-पतिका, (२) खण्डिता, (३) कलहान्तरिता, (४) विप्रलब्धा, (५) उत्कंठिता, (६) वासकसज्जा, (७) स्वाधीन-पतिका, (८) अभिसारिका, (९) प्रवत्स्यत्पतिका और (१०) आगत-पतिका।

प्रोषित-पतिका

जिस स्त्री का प्रियतम विदेश में हो और वह वियोग-दुखिता हो उसे 'प्रोषित-पतिका' कहते हैं।

मुग्धा प्रोषित-पतिका

का सों कहउँ सँदेसवा, पिय परदेसु।
लगेउ चैत नहिं फूलइ, तेहि बन टेसु ॥ ३८ ॥

मध्या प्रोषित-पतिका

का तुम जुगल तिरियवा, झगरति आइ।
पिय बिनु मनहुँ अटरिया, मोहिं न सुहाइ ॥ ३९ ॥

पाठ० ३६—१ मोहि कहत बिधु बदनी [रहि०, र०]
३७—१ दारुए भेस सुगरवा [रहि०, र०]
२ गुमान [रहि०, र०]

प्रौढा प्रोषित-पतिका

तैं अब जाइ बेइलिया, बरि जरि मूल।
बिनु पिय सूल करेजवा, लखि तुव फूल ॥ ४० ॥

खंडिता

प्रियतम के शरीर पर अन्यत्र रमण के चिन्ह देख दुखित होकर क
करनेवाली नायिका को 'खंडिता' कहते हैं।

मुग्धा-खंडिता

सखिसिखसीख[1] नवलिया, कीन्हेसि मान।
पियलखि[2] कोप-भवनवाँ, ठानेसि ठान ॥ ४१ ॥
सीस नवाइ नवेलिया, निचवइ जोइ।
छिति खन छोरछिगुनिआँ, सुसुकति रोइ ॥ ४२ ॥

मध्या खंडिता

गिर गइ पीय पगरिया, आलस पाइ।
पवढ़उ जाइ बरोठवा, सेज बिछाइ[1] ॥ ४३ ॥
पोछहु अधर कजरवा, जावक भाल।
[1]उपटेउ पीतम छतियाँ, बिनु गुन माल ॥ ४४ ॥

प्रौढा खंडिता

पिय आवत अँगनैया, उठि कै लीन।
बिहँसत चतुर तिरियवा, बैठक दीन ॥ ४५ ॥
पौढ़हु पीय पलँगिया, मींजउँ पाय।
रैन जगे कइ निंदिया, सब मिटि जाय ॥ ४६ ॥

पाठा० ४१—१ मानि, २ निनु [रहि०, र०]
४३—१ डसाइ [रहि०, र०]
४४—१ उपजेउ [रहि०, र०]

परकीया खडिता

जेहि लगि सजन सनेहिया, छुट ?र वार।
अपने[1] होत पिअरवा, सॉच पराग ॥ ४७ ॥

गणिका खडिता

मितवा ओठ कजरवा, जावक भाल।
लिहेसि काढि बइरिनियाँ, तकि मनि माल ॥ ४८ ॥

कलहान्तरिता

प्रियतम से कलह करके बाद को अनुताप करनेवाली नायिका को 'कलहान्तरिता' कहते हैं।

मुग्धा कलहान्तरिता

आयहु अबहि गवनवाँ, तुरतहि[1] मान।
अब रसलागि[2] गोरिअवा, मन पछतान ॥ ४९ ॥

मध्याकलहान्तरिता

मैं मतिमन्द तिरियवा, परलिउ[1] भोरि।
ते[2] नहिँ कन्त मनावत, तेहिँ कछु खोरि ॥ ५० ॥

पा० ४७—१ आपन हित परिवारवा, सोच पार [रहि०, र०]
४९—१ जुरते, २ लागिहि गोरियहि [रहि०, र०]
५०—१ परलेउ भोर [रहि०, र०]
२ तेहि नहि कन्त मनवलेउँ, तोहि कछु खोर [रहि०, र०]

प्रौढा कलहान्तरिता

थकिगा[1] करि मनुहरिआ, फिरिगा पीय।
मैं उठि[2] तुरति न लायेउँ, हिमकर हीय ॥ ५१ ॥

परकीया कलहान्तरिता

जेहि लगि कीन्ह बिरोधवा[1], ननद जेठानि।
रखेउँ न लाइ करेजवा, तेहि हित जानि ॥ ५२ ॥

गणिका कलहान्तरिता

जेहि दीन्हेउ बहु बिरियाँ, मोहिं मनिमाल।
तेहि ते रूठिउँ सखिया, फिरि गये लाल ॥ ५३ ॥

विप्रलब्धा

संकेत-स्थान में प्रियतम को न देखकर जो नायिका व्याकुल होती है उसे 'विप्रलब्धा' कहते हैं।

मुग्धा विप्रलब्धा

मिलेउ न कन्त सहेटवा, लखेउ डेराइ[1]।
धनियाँ कमल-बदनियाँ, गइ कुम्हिलाइ ॥ ५४ ॥

मध्या विप्रलब्धा

दीख न केलि भवनवाँ, नन्दकुमार।
लै लै ऊँचि उससवा, हुइ बिकरार ॥ ५५ ॥

पाठा० ५१—१ गइ मन बन हरिया [रहि०, र०], २ रुठि [र०]
बरवा न० ५१ 'र०' में 'मध्या कलहान्तरिता के उदाहरण' में दिया गया है।
५२—१ बिरोगवा [ह०]
५४—१ फिरि दुबराय [रहि०, र०]

प्रौढा विप्रलब्धा

देखि न कन्त सहेटवा, भा दुख पूर[1]।
रोवत नैन कजरवा, होइगा दूर ॥ ५६ ॥

परकीया विप्रलब्धा

वैरिनि मइ[1] अभिसरवा, अति दुख दानि।
नापर[2] मिलेउ न मितवा, भइ पछ्तानि ॥ ५७ ॥

गणिका विप्रलब्धा

करिके सोरह सिँगरवा, अतर लगाइ।
मिलेउ न लाल सहेटवा, फिरि पछिताइ ॥ ५८ ॥

उत्कठिता

प्रियतम के आने में विलम्ब होता देखकर जो स्त्री चिंतित होती है उसे 'उत्कठिता' कहते हैं।

मुग्धा उत्कठिता

गइ[1] जुगजाम जमिनिया, पिय नहिं आय।
राखेउ कउनि सवतिया, धौं[2] विल्माय ॥ ५९ ॥

मध्या उत्कठिता

जोहति परी[1] पलँगिआ, पिय के बाट।
बेचेउ चतुर तिरिअवा, धौं[2] केहि हाट ॥ ६० ॥

पा० ५६—१ भीतन नैन कजरवा, है गो झर [रहि०, र०]
५७—१ भो, २ आतउ [रहि०, र०]
५९—१ भो [र०], भा [रहि०]
२ रहि [रहि०, र०]
६०—१ तीय अवनवा, २ केहि के [रहि०, र०]

प्रौढा उत्कंठिता

पिय पथ हेरत गोरिया, भा भिनुसार।
चलौं न करहिं पिअरवा, तुव इतवार ॥ ६१ ॥

परकीया उत्कंठिता

उठि उठि जात खिरकिया, जोहति बाट।
कत[1] वह आइहि मितवा, सूनी खाट ॥ ६२ ॥

गणिका उत्कंठिता

कठिन नींद भिनुसरवा, आलस आइ[1]।
धन दे मूरख मितवा, रहल लोभाइ ॥ ६३ ॥

वासकसज्जा

प्रियतम का आगमन जानकर संभोग की तैयारी करनेवाली नायिका को 'वासकसज्जा' कहते हैं।

मुग्धा वासकसज्जा

हरुए गवन नवेलिया, दीठि बचाइ।
पौढी जाय पलँगिया, सेज बिछाइ ॥ ६४ ॥

मध्या वासकसज्जा

सुभग बिछाइ पलँगिया, अंग सिँगार।
चितवति चौंकि तरुनिआँ, दै दृग द्वार ॥ ६५ ॥

पाठ० ६१—१ चल्हु न करिहि तिरियवा, [रहि०, र०]
६२—१ कतहुँ न आवत मितवा, सुनि सुनि खाट। [रहि०, र०
६३—१ पाइ [रहि०, र०]

प्रौढा वासकसज्जा

हँसि रहि हेरि अरसिआ, सहज सिंगार।
उतरत चढत पलँगिया, तिय कत बार॥ ६६॥

परकीया वासकसज्जा

सोवत सब गुरलोगवा, जानेउ बाल।
दीन्हेसि खोलि खिरकिया, उठि कै हाल॥ ६७॥

गणिका वासकसज्जा

कीन्हेसि सबै सिंगरवा, चातुर बाल।
अइहैं प्रान पियरवा, लै मनि माल॥ ६८॥

स्वाधीन पतिका

जिस स्त्री का पति सदा उसके वश में रहे उसे 'स्वाधीन पतिका' कहते हैं।

मुग्धा स्वाधीन पतिका

आपुहि देत जवकवा, गहि गहि पाइ।
आपु देत मोहिं पियवा, पान खवाइ॥ ६९॥

मध्या स्वाधीन पतिका

पीतम करत पियरवा, कहल न जात।
रहत गढावत सोनवा, हियइ सिरात॥ ७०॥

प्रौढा स्वाधीन पतिका

मैं अरु मोर पियरवा, जस जल मीन।
बिछुरत तजत परनवा, रहत अधीन॥ ७१॥

परकीया स्वाधीन पतिका

पिय जुग नैन चकोरवा, मो मुख चंद।
जानति हैं पिय अपने, मोहिं सुखकन्द ॥ ७२ ॥

गणिका स्वाधीन पतिका

लै हीरन के हरवा, मोतिन माल।
मोहिँ रहत पहिरावत, बस हुइ लाल ॥ ७३ ॥

अभिसारिका

प्रियतम के पास सभोग के लिये सकेत स्थान में जानेवाली या सकेत स्थान में उसे बुलानेवाली नायिका को 'अभिसारिका' कहते हैं

मुग्धा अभिसारिका

चलीं लिवाय नवेलिअहिं, सखि सब संग।
जस हुलसत गुदगुदवा, मत्त मतंग ॥ ७४ ॥

मध्या अभिसारिका

पहिरे लाल अछुअवा, तिय गज पाइ।
चढि कै नेह हथअवा हुलसत जाइ ॥ ७५ ॥

प्रौढा अभिसारिका

चली रैन अँधिअरिया, साहस गाढि।
पायेल केरि कँकरिया, डारेसि काढि ॥ ७६ ॥

स० ७४—कविवर मतिराम के इस दोहे का भाव भी ऐसा ही है —
अली चली नवलाहि लै, पिय पै साज सिँगार।
ज्यो मतंग अड़दार को, लिये जात गड़दार ॥

परकीया अभिसारिका

नील मनिन के हरवा, नील सिंगार ।
किये रैन अँधिअरिया, धन अभिसार ॥ ७७ ॥

गणिका अभिसारिका

धन हित कीन सिँगरवा, चातुर बाल ।
चली संग लै चेरिया, जहँवा लाल ॥ ७८ ॥

शुक्लाभिसारिका

सेत कुसुम के हरवा, भूषन सेत ।
चली रैन उजिअरिया, पिय के हेत ॥ ७९ ॥

दिवाभिसारिका

पहिरि बसन जरतरिया, पिय के हेत ।
चली जेठ दुपहरिया, मिलि रबिजोत ॥ ८० ॥

प्रवत्स्यत्पतिका

प्रियतम का विदेश जाना सुनकर आकुल होने वाली स्त्री को 'प्रवत्स्यत्पतिका' कहते हैं ।

मुग्धा प्रवत्स्यत्पतिका

परिगा कान सखिअवा, पिय कर गौन ।
बैठी कनक पलँगिआ, होइ के मौन ॥ ८१ ॥

मध्या प्रवत्स्यत्पतिका

सुठि सुकुमार तरुनिआँ, सुनि पिय गौन ।
लाजन पौढ़ि ओवरिया, होइ के मौन ॥ ८२ ॥

प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्पतिका

वन घन फूलहिँ टेसुआ, बगिअन बेलि।
तब[1] पिय चलेउ बिदेसवा, फागुन फेलि ॥ ८३ ॥

परकीया प्रवत्स्यत्पतिका

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि।
तिय[1] की सुरति गगरिया, रहि मग लागि ॥ ८४ ॥

गणिका प्रवत्स्यत्पतिका

पीतम इक सुमिरिनियाँ, मोहिँ दइ जाहु।
जेहि जपि तोर बिरहवा, करब निबाहु ॥ ८५ ॥

आगतपतिका

विदेश से प्रियतम के आगमन पर प्रसन्न होनेवाली नायिका को 'आगतपतिका' कहते हैं।

मुग्धा आगतपतिका

बहुत दिवस पर पियवा, आयेउ आज।
पुलकित नवल दुलहिया[1], कर गृह-काज ॥ ८६ ॥

मध्या आगतपतिका

पियवा पौरि[1] दुअरवा, उठि किन देखु।
दुरलभ पाइ बिदेसिया, जिय[2] के लेखु ॥ ८७ ॥

पाठा० ८३—१ चलेउ बिदेस पिअरवा, फगुआ फेलि [रहि०]
'र०' में 'फेलि' की जगह 'रेलि' है।
८४—१ पिय [रहि०, र०]
८६—१ बधुइआ [ह०]
८७—१ आय २—सुद अवरेख [रहि०, र०]

प्रौढ़ा आगतपतिका

आवन सुनत तिरिअवा, उठि हुलसाइ।
तलफत मनहुँ मछरिया, जनु जल पाइ ॥ ८८ ॥

परकीया आगतपतिका

पूछन[1] चली खबरिया, मितवा तीर।
हरखित[2] अतिहि तिरिअवा, पहिरति[3] चीर ॥ ८९ ॥

गणिका आगतपतिका

तो लगि मिटहि न मितवा, तन कइ पीर।
जौ[1] लगि पहिरि न हरवा, जटित सुहीर ॥ ९० ॥

नायिकाएँ गुणों के अनुसार निम्न लिखित तीन श्रेणियों में विभक्त की जाती हैं। यथा —

(१) उत्तमा (२) मध्यमा और (३) अधमा।

उत्तमा

प्रियतम के अवगुणों को देखकर भी जो नायिका रुष्ट नहीं होती वह 'उत्तमा' है। यथा —

लखि अपराध पिअरवा, नहिं रिस कीन्ह।
बिहँसत चनन चउकिया, बैठक दीन्ह ॥ ९१ ॥

मध्यमा

प्रियतम के गुण-दोष के अनुसार मान और कोप करनेवाली नायिका 'मध्यमा' कहलाती है। यथा —

पाठ० ८८—१ यौवन प्रान पिअरवा, हेरेउ आइ।
नरफत मीन तिरिअवा, जिमि जल पाइ ॥ [६०]
८९—१ पूछत, २ नैहर खोज, ३ पहिरि सुचीर। [६०]
९०—१ जौ लगि पहिरि नखतिया, नख नग चीर ॥ [६०]

यिन गुन पिय उर हरवा , उपटेउ हेरि ।
चुप ह्वइ चित्र पतुरिया , रहि चख[1] फेरि ॥ ९२ ॥

अधमा

प्रियतम के आदर करने पर भी जो गुमान ही करती रहती है वह नायिका 'अधमा' कहलाती है । यथा —

बार[1] बार गुरु मनवा , जनि करु नारि ।
मानुप[2] औ गज मोतिआ , जो लगि बारि ॥ ९३ ॥

नायक-वर्णन

स्त्रियाँ जिसे सानुराग देखें वह 'नायक' है । यथा —

सुन्दर चतुर धनिकवा , जानिक ऊँच ।
केलि कला परविनवा , सील समूच ॥ ९४ ॥

नायक के तीन भेद हैं —(१) पति (२) उपपति और (३) वैसिक । यथा —

पति

पति उपपति वैसिकवा , त्रिविधि बखान ।
विधि सों व्याहो गुरु जन, पति सो जान ॥ ९५ ॥

पाठा० ९२—१ मुख [रहि०, र०]
९३—१ येरहि बेर गुमनवा, २ मानिक और गज मुकुता [रहि०, र०]

बरवा सं० ९५ हस्तलिखित पुस्तक में नहीं है । हमारी धारणा है कि यह बरवा निम्नांकित दोहे के आधार पर बना है —

पति उपपति बैसिक त्रिविधि , नायक भेद बखानि ।
बिधि सो व्याहो पति कहैं , कवि-कोविद मत आनि ॥

ले कै सुघर पुरुषवा[1], आपन[2] साथ।
छपरो[3] एक छतरिया, बरखत पाथ॥ ९६॥

पति के चार भेद होते हैं —(१) अनुकूल (२) दक्षिण (३) शठ
र (४) धृष्ट।

अनुकूल

पर-स्त्री विमुख नायक 'अनुकूल' कहलाता है। यथा —

करत नहीं[1] अपरधवा, सपनेहु पीउ।
मान करन कौं[2] सधवा, रहिगा[3] जीउ॥ ९७॥

दक्षिण

अनेक पत्नियों से समान प्रीति रखनेवाला नायक 'दक्षिण' कहलाता
। यथा —

सब मिलि[1] करहिं निहोरवा, हम कहँ देहु।
चुनि चुनि चम्पक चुरियाँ, उच से लेहु॥ ९८॥

शठ

अपराध करनेवाला कपटी, परन्तु मिष्टभाषी, नायक 'शठ' कहलाता
यथा —

छाड़ेउ लाज डगरिया, औ कुल-कानि।
करत रोज[1] अपरधवा, परि गइ बानि॥ ९९॥

ा० ९६—१ सुरपिया, २ पिय के, ३ छइबे [रहि०, र०]
९७—१ न हिय, २ की बेरियाँ, ३ रहि गइ हीय [रहि०, र०]
९८—१ मोतिन [रहि०, र०]
९९—१ जात [रहि०, र०]

धृष्ट

जो अपराध करता है किन्तु जरा भी लज्जित नहीं होता, वह नायक 'धृष्ट' कहलाता है। यथा —

जहँवा जगेउ[1] रहनियाँ, तहँवा जाहु।
जोगि नयन निर्लजवा, कत मुसुकाहु ॥ १०० ॥

उपपति

परकीया के प्रेम पास नायक को 'उपपति' कहते हैं। यथा —

झाँकि झरोखे गोरिया, आँखिन जोर।
फिरि चितवनि चित मितवा, करत निहोर ॥ १०१ ॥

वैसिक

गणिका के प्रेमी नायक को 'वैसिक' कहते हैं। यथा —

लटकी[1] नील जुलुफिया, बसी भाय[2]।
मो मन बार बधुइया, मीन बझाय ॥ १०२ ॥

उपर्युक्त नायका के अतिरिक्त नायक के तीन भेद और होते हैं - (१) मानी (२) वचन-चतुर और (३) क्रिया चतुर।

मानी

नायिका से मान करनेवाला नायक 'मानी' कहलाता है। यथा -

अब[1] न जनम भर सखिया, ताकौं वोहि।
ऐंठलि गइ अभिमानिया, तजि गइ मोहि ॥ १०३ ॥

पाठा० १००—१ जात [रहि०]
१०२—१ जनु अति नील अलकिया, २ लाय [रहि०, र०]
१०३—१ अब भरि जनम सहेलिया, तकब न ओहि।
[रहि०, र०

वचन-चतुर

वाक् चातुर्य से अपना काम सिद्ध करनेवाला नायक 'वचन चतुर' लाता है। यथा —

सघन कुंज अमरैया, सीतल छाँहि।
झगरत आइ कोइलिया, फिरि उड़ि जाहि॥ १०४॥

क्रिया-चतुर

छल क्रिया से अपना काम सिद्ध करनेवाला नायक 'क्रिया चतुर' हाता है। यथा —

खेलत जानेसि टोलिआ[1], नन्दकिसोर।
छुइ वृषभान कुअँरिया, होइगा चोर॥ १०५॥

प्रोषित नायक

विदेश में विरह-वश व्याकुल होनेवाले नायक को 'प्रोषित नायक' कहते हैं। यथा —

करिबे ऊँचि अटरिया, तिय-सँग केलि।
कब धौं पहिरि गजरवा, हार चमेलि॥ १०६॥

दर्शन

दर्शन ४ तरह के होते हैं —(१) स्वप्नदर्शन (२) चित्रदर्शन (३) श्रवणदर्शन और (४) साक्षात् दर्शन।

बरवा सं० १०४ और १०५ 'र०' में स्वानी के उदाहरण में दिये गये हैं।
[1] पाठ० सं० १०५—१ टोलवा [रहि०, र०]
बरवा सं० १०६ 'रहि०' और 'र०' में 'घैसिक' के उदाहरण में दिया गया है। पाठान्तर सिर्फ 'तिय' की जगह 'पिय' है।

स्वप्नदर्शन

पीतम मिलेउ सपनवाँ, भा सुख-खानि।
'आनि जगाएसि चेरिया,, भइ दुखदानि ॥ १०७ ॥

चित्रदर्शन

पिय मूरति चितसरिया, देखत[1] बाल।
सुमिरत[2] ओधि बसेरवा, जपि जपि बाल[3] ॥ १०८ ॥

श्रवणदर्शन

आयेउ मीत बिदेसिया, सुनु सखि तोर।
उठि किन करसि सिंगरवा, सुनि सिख मोर ॥ १०९ ॥

साक्षात्दर्शन

बिरहिनि अउर बिदेसिया, भे इक ठोर।
पिय मुखहेरि[1] तिरिअवा, चन्द चकोर ॥ ११० ॥

सखी-वर्णन

सरल स्वभाववाली सुनइ स्त्रियाँ जिनमें नायक और नायिकायें किसी प्रकार का भेद नहीं रखते 'सखी' कहलाती हैं। सखियों के कार्य मंडन, शिक्षा, उपालम्भ और परिहास यह चार भेद हैं।

मंडन

नायिका को वस्त्राभूषणादि से श्रृंगार कराना 'मंडन' है। यथा —

पाठा० १०७—१ जाय [ह०]
१०८—१ चितवति, २ बितवति, ३ माए। [रहि०, र०]
११०—१ तकत [रहि०, र०]

सखियन कीन सिँगरवा , रचि बहु भाँति ।
हेरति नैन अरसिया ,मुरः[1] मुसुकाति ॥ १११ ॥

शिक्षा

नायिका को विनय और विलासादि की सिखावन देना 'शिक्षा' । यथा —

छाकहु बइठि दुअरिया , मीँड्हुँ[1] पाव ।
पिय तन पेखि गरमियाँ , बिजन डोलाव ॥ ११२ ॥

उपालभ

नायक या नायिका की ओर से उलाहना देना 'उपालभ है । यथा —

चुप होइ रहेउ सँदेसवा , सुनि मुसुकाय ।
पिय निज कर बिछवनवाँ, दीन्ह उठाय ॥ ११३ ॥

परिहास

जिस कार्य से नायक और नायिका को आनन्द प्राप्त होता हो उसे 'परिहास' कहते हैं । यथा —

बिहँसन भौंह चढाये , धनुप[1] मनोज ।
लावति उर अबलनियाँ, पै ठिउरोज[2] ॥ ११४ ॥

पाठा० १११—१ मुरि [रहि०, र०]
११२—१ मीजहु [रहि०, र०]
यरवा स० ११२ 'रहि०' में 'शिक्षा' के उदाहरण में दिया गया है ।
११४—१ धनुपमनीय } रहि०
२ उठिउठि पीय }

स्फुट रचनाएँ

मदनाष्टक

मालिनी छन्द

वहति मरुति मन्द्रम् मैं उठी राति जागी।
शशि कर कर लागैं सेल ते पैन वागी॥
अहह! विगत स्वामी क्या करों मैं अभागी।
मदन शिरसि भूय, क्या बला आन लागी॥ १॥

हर-नयन हुताश ज्वालया जो जलाया।
रति नयन-जलौघे खाक बाकी बहाया॥
तदपि दहति चित्तम् मामक क्या करोगी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी॥ २॥

हिम-ऋतु रति धामा सेज लोटौं अकेली।
उठत विरह-ज्वाला क्यों सहारी सहेली॥
चकित-नयन बाला! तत्र निद्रा न लागी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी॥ ३॥

मनसि मम नितान्तम् आइ के वासु कीया।
तन मन सब मेरा मानहू छीन लीया॥
इति वदति पठानी मन्मथाङ्गी वियोगी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी॥ ४॥

कमल मुकुल मध्ये राति को पै सयानी।
लखि मधुकर वधम् तू भई री दिवानी॥
तदुपरि मधुकाले कोकिला देखि भागी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी॥ ५॥

तव वदन मयकीं ब्रह्म की चोप वाढी।
मुख कमॅलरिख भ्रू प चाँदते कांति गाढी॥
मदन मथित रंभा देखते तोहि भागी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी॥ ६॥

नभसि घन घनान्ते घनी केसि छाया।
पथिक-जन-वधूना जन्म केना गॅवाया॥
अति चतुर मृगाक्षी देखतें मान भागी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी॥ ७॥

विगन घन निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन वन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई॥
सुत पति गत निद्रा स्वामियाँ छोड भागी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी॥ ८॥

शृङ्गार सोरठ

'रहिमन' पुतरी स्याम, मनहुँ अलज मधुकर लसे।
कैं धां सालिग्राम, रूप के अरघा धरे॥ १॥

पलटि[1] चली मुसुकाय, दुति 'रहीम' उपजाय[2] अति।
बाती सी उसकाय, मानो दीनी दीप की॥ २॥

पाठ० २—१ पुलकि
२—२ उजियाय [र०]

दीपक हिये छिपाय, नवल वधू घर लै चली।
कर विहीन पछिताय, कुच लखि निज सीसै धुनै ॥ ३ ॥

गई आगि उर लाय, आगि लेन आई जो तिय।
लागी नाहिं बुझाय, भभकि भभकि बरि बरि उठै ॥ ४ ॥

यक नाहीं यक पीर, हिय 'रहीम' होती रहै।
काहु न भई सरीर, रीति न वेदन यक सी ॥ ५ ॥

तुरक गुरुक भरपूर, डूबि डूबि सुर गुरु उठै।
चातक जातक दूरि, देह दहै बिन देह को ॥ ६ ॥

* * *

फुटकर-काव्य

कवित्त

अति अनियारे, मानौं सान दै सुधारे, महा—
विष के बिषारे, ये करत परघात हैं।
ऐसे अपराधी, देख अगम अगाधी, यहै—
साधना जुसाधी, हरि हिये में अन्हात हैं।

स० ३—लाला भगवानदीनजी ने इसको दोहे के रूप में निम्न प्रका लिखा है। देखिये 'सूक्ति-सरोवर'—पृष्ठ ४०७

नवल वधू घर लै चली, अंचल दीप छिपाय।
कर न दिये करतार मोहिं, सीस धुनै पछिताय ॥

इस सोरठे को अज्ञात कवि का माना है।

थार वार थोरे, यातें लाल लाल डोरे, भये—
तौ हूँ तो 'रहीम थोरे, विधना सकात हैं।
घाइक घनेरे, दुखदाइक हैं मेरे, नित—
नैन-बान तेरे, उर बेधि बेधि जात हैं ॥ १ ॥

सवैया

सीखी है येसी 'रहीम' कहा, इन नैन[1] अनोखे धा नेह की नाँधन।
ओट भये रहते न बने कहते न बने विरहानल दाधन॥
पुन्यन प्यारे सों भेट भई प पै भौन कुसङ्ग मिल्यो अपराधन।
स्याम सुधानिधि आनन की मरिए सखी सूधे चितैबेकी साधन॥२॥

कवित्त

पट चाहे तन, पेट चाहत छदन,
मन चाहत है धन, जेती सम्पदा सराहिबी।
तेरोई कहाय कै, 'रहीम' कहै दीनबन्धु,
आपुनी विपति जाय, काके द्वार काहिबी।
पेट भर खायो चहै, उद्यम बनायो चहै,
कुटुम जियायो चहै, काढ़ि गुन लाहिबी।
जीविका हमारी, जो पै औरन के कर डारी,
ब्रज के विहारी, तौ तिहारी कहा साहिबी॥ ३॥

पाठा० २—१ नैनन मोरी

घनाक्षरी

बड़ेन सों जान पहिचान, तो[१] 'रहीम' कहा[२],
जो पै करतार ही, न सुखदेनहार है।
सीतहर[३] सूरजसों, प्रीति करी पंकज ने,
तऊ कज-बनन को जारत तुषार है॥
उदधि[४] के बीच बस्यो, शंकर के सीस बस्यो,
तऊ न कलंक नस्यो, ससि में सदा रहे।
बड़े[५] रिझवार हैं, चकोर दरबार देख्यो,[६]
सुधाधर[७] यार प पै, चुगत अँगार है॥ ४॥

सवैया

जाति हुती सखि गोहन में मनमोहन को लखि[१] कै ललचानो।
नागर नारि नई ब्रज की उनहूँ नँदलाल को रीझिबो जानो॥
जाति भई फिरि कै चितई तब भाव 'रहीम' यहै उर आनो।
ज्यों कमनेत[२] दमानक में फिरि तीर सों मारि लै जात निसानो॥५॥

पाठा० ४—१ कै, २ काह, ३ सेश हरि सूरज सों नेह कियो याही हेत तऊ पै कमल जारि डारत तुषार है, ४ छीरनिधि माँहि, ५ जडो रीझिवार हे, ६ ह, कलानिधि सों यार तऊ चाखत अँगार है [र०, रहि०]

५—१ बहुतै [र०], २ कमनीय [रहि०]

दीन चहै करतार जिन्हैं सुख, कौन 'रहीम' सके तिहिं टारे।
उद्यम[1] कोउ करो न करो, धन आवत है चिन ताके हँकारे॥
देव हँसैं सब[2] आपुस में विधि के परपच न कोउ[3] निहारे।
बेटा भयो वसुदेव के धाम औ दुंदुभी बाजत नन्द के द्वारे॥६॥

जेहि कारन बार न लाये कछू, गहि सम्भु सरासन दोय किया।
न[1] हुतो समयो बनवासहु को पै निकास पिता बनवास दिया॥
भजि[2] भेद 'रहीम' रह्यो न कछू करि राखी हुती उन हार हिया।
विधियों न सिया रसबार सिया करजार सिया पियसार सिया॥७॥

दोहा

तारायन ससि रैन प्रति, सूर होहिं ससि गैन।
तदपि अँधेरो है सखी, पीउ न देखे नैन॥८॥

भजन

छबि आवन मोहनलाल की।
लाल काछनी काछे कर मुरली पीत पिछौरी साल की॥
वक तिलक केसर को किये दुति मानो बिधु-बाल की।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते चितवनि नयन बिसाल की॥

पाठ० ६—१ उद्यम पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहि हाथ पसारे,
२ अपनी अपना, ३ आत बिचारे। [र०, रहि०]
७—१ गयो गेहहि त्यागि कै ताहि समै सो
निकारि पिता बनवास दिया।
७—२ कहँ बीच रहीम रह्यो न कछू
जिन कीनो हुतो बिन हार हिया॥
[र०, रहि०]

नीकी हँसनि अधर सधरनि की छवि छीनी सुमन गुलाल की।
जल सों डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुकुता माल की॥
आप मोल विन मोलनि डोलनि बोलनि मदनगोपाल की।
यह सरूप निरखे सोइ जाने इस 'रहीम' के हाल की॥९॥

कमल-दल नैननि की उनमानि।
बिसरत नाहिँ सखी मो मन ते मंद मंद मुसुकानि॥
यह दसनन दुति चपला हू ते महाचपल चमकानि।
बसुधा की बसकरी -मधुरता सुधा पगी बतरानि॥
चढ़ी रहे चित उर बिसाल की मुकुतमाल थहरानि।
नृत्य समय पीताम्बर हू की फहरि फहरि फहरानि॥
[1]भावति श्री वृन्दावन ब्रज ते अनुदिन[2] आवन[3] जानि।
छवि 'रहीम' चित ते न टरति है सकलस्याम की बानि॥१०॥

बरवै

या झरमें घर घर में, मदन हिलोर।
पिय नहिँ अपने कर मैं, करमै खोर॥११॥
ओंठ की चनन कवरिया, जो हो बाट।
उड़िग सोन चिरैया, पिंजर हाथ॥१२॥

सुनिये विटप प्रभु पुहुप तिहारे हम
राखिये हमें तो सोभा रावरी बढ़ाइहैं।
तजि हौ हरप तो विरप है न चारो कछू
जहाँ जहाँ जैहें तहाँ दूनी छवि पाइहैं।

—१ अनुदिन, २ आवन [रहि०, र०]
३ जावन [र०]

सुरन चढ़ेंगे सुर नरन चढ़ेंगे हम
सुकवि 'रहीम' हाथ हाथ ही बिकाइ हैं।
देस में रहैंगे परदेस में रहैंगे
काहू भेष में रहैंगे पै रावरे कहाइ हैं॥ १३॥

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था॥
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला॥ १४॥

कठिन कुटिल कारी देख दिलदार जुल्फें[1]।
अलि कलित निहारें[2] आपने दिल की कुल्फें॥
सकल शशिकला को रोशनी हीन लेखा।
अहह! ब्रजलला को किस तरह फेर देखा॥ १५॥

दृग[1] छकित छबीली छैलरा की छरी थी।
मणि जटित रसीली माधुरी मूँदरी थी॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब देखा।
कहि न सकत[2] जैसा स्याम का हस्त देखा॥ १६॥

जरद बसन वाला गुल चमन देखता था।
झुक झुक मतवाला गावता रेखता था॥
श्रुतियुग चपला से कुंडलें झूमते थे।
नयन कर तमाशे मस्त ह्वै घूमते थे॥ १७॥

तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारें।
अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारें॥

१५—१ अलक, २ बिहारी।
१६—१ छवि, २ सकी।

मधुर मधुप हेरे मान[1] मस्ती न राखे।
बिलसति मन मेरे सुन्दरी श्याम आँखे॥१८॥
भुजग जुग किधों हैं काम कमनैत सोहैं।
नटवर ! तव मोहैं बाँकुरी मान मोहैं॥
सुनु सखि ! मृदुबानी बे दुरुस्ती अकिल में।
सरल सरल सानी कै गई सार दिल में॥१९॥
पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ।
असल अमृत प्याला क्यों न मुझको पिलाओ॥
× × × × × × × × × ×।
× × × × × × × × × ×॥२०॥

रहीम-काव्य

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्णया भूमिका।
व्योमाकाश खखावराब्धि वसुवत् त्वत्प्रीतयेऽद्यावधि॥
प्रीतस्त्व यदि चेन्निरीक्ष्य[1] भगवन् स्वं[2] प्रार्थित देहिमे।
नोचेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनरत्वेताहशीं भूमिका॥१॥

(अर्थ)—हे श्रीकृष्ण ! मैं तुम्हारे आगे इस भेष (नाट्यरूप) में नट के समान उपस्थित हुआ हूँ और आजतक तुम्हारे प्रसन्नतार्थ ही मैंने ८४ लक्ष रूप धारण किये हैं। भगवन् ! यदि इस नटरूप से आप प्रसन्न हैं तो जो मैं माँगता हूँ दीजिये (मुक्त कीजिये)। यदि न प्रसन्न हो तो

पाठा० १८—१ मार।
१—१ चेन्निरीक्ष, २ स्वं [रहि०]

कहिय फिर कभी ऐसी भूमिका म न आओ, अर्थात् आवागमन स रहित कीजिये।

रत्नाकरोऽस्ति सदन गृहिणीच पद्मा,
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय ॥
राधा गृहीत मनसे मनसे चतुभ्य,
दत्तं मया निज मनस्तदिदं गृहाण ॥२॥

(अर्थ)—हे जगदीश्वर ! आपका समुद्र (रत्नाकर) घर ह, लक्ष्मी गृहिणी हैं। इसलिये आपको क्या देने योग्य है ? अथात् कुछ नहीं। परन्तु आप का मन राधा न चुरा लिया है। वह आप के पास नहीं है। अत आपको रिक्त मन के स्थान में मैंने अपना मन दिया। उसे ग्रहण कीजिये ॥

अहिल्या पाषाण प्रकृति पशुरासीत कपि चमू।
गुहो भूच्चाडालस्त्रितयमपि नीतंनिज पदम् ॥
अहं चित्तेनाश्मा[1] पशुरपि तवर्चादि करणे।
क्रियाभिश्चाडालो रघुवर ननामुद्धरसि किम् ॥३॥

अर्थ—अहिल्या पाषाण होने मे प्रकृति ह, बन्दरों की सेना पशु ह, और गुह चाडाल था। परन्तु तीनो को आपने निज लोक में स्थान दिया। इधर मैं चित्त से पत्थर हूँ, आपकी पूजादि करने में पशु हूँ और क्रिया करने में चाडाल हूँ। अब मुझ में उन तीनो गुण हैं फिर भी हे राम ! मेरा उद्धार क्या नहीं करते ?।

यद्यात्रया व्यापकता हताते भिदैकता वाक्परता च तुत्या[1] ।
ध्यानेन बुद्धे परता परेश[2] जात्याजताक्षन्तुमिहार्हसित्व ॥४॥

पाठा० ३—१ चित्तेनाश्म
४—१ स्तुत्या, २ परेश [रहि०]

अर्थ—हे परमात्मन् ! जब हम आपकी यात्रा के लिये तीर्थों में जाते हैं तो हम मान लेते हैं कि आप यहीं नहीं हैं। इससे आपकी व्यापकता नष्ट करते हैं। नमस्कारादि करने से जीव और ब्रह्म की एकता व वाणी से परे होने की क्षमता नष्ट करते हैं। यदि एक माना जाय तो नमस्कार कौन किस को करे, जो वाणी से परे हैं उससे नमस्कार आदि कथन व स्तुति कैसे की जा सकती है। हे परेश ! ध्यान करने से बुद्धि से परे होने के गुण को नष्ट करते हैं और अवतार मानने से आपकी अजता को नष्ट करते हैं। अतः इन कृत्यों पर हमें क्षमा कीजिये। कितना गूढ़ भाव भरा हुआ है !

दृष्ट्वातत्र विचित्रता, तरुलता, मैं था गया बाग में।
काचित्तत्र कुरंगशावनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी॥
उन्नत[1] भ्रू धनुषा कटाक्ष विशिखै घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोह जल धौ, हे दिल गुजारो शुकर॥५॥

अर्थ—मैं बाग में विचित्र वृक्ष और लताओं को देखकर गया था। कोई मृगशावकनयनी वहाँ खड़ी फूल तोड़ रही थी। धनुषाकार तनी हुई भौं पर कटाक्षरूपी बाण रखकर उसने मुझे घायल किया। उससे सदैव मोह-समुद्र में डूबा दुख पा रहा हूँ। हे दिल, उसका धन्यवाद कर।

एकस्मिन्दिवसावसान समये, मैं था गया बाग में।
काचित्तत्र कुरंग बाल नयना, गुलतोड़ती थी खड़ी॥
तां दृष्ट्वा नवयौवनां शशिमुखीं[1], मैं मोह में जा पड़ा।
नो जीवामित्वया विना शृणु प्रिये, तू यार कैसे मिले॥६॥

पाठा० ५—१ उन्मत्त।
६—१ शशिमुखी [रहि०]

अर्थ—एक दिन संध्या के समय मैं बाग में गया था कोई मृगशावक-यनी स्त्री फूल तोड़ रही थी। उस शशिमुखी मृगनयना को देख कर मैं मोह में आ पड़ा। हे प्रिये सुन! तेरे बिना मैं न जीऊँगा। अतः, हे मित्र! तू किस प्रकार मुझे मिलेगा।

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु।
नापकृतं नोपकृतं नोपकृतं किं कृतं तेन॥ ७॥

अर्थ—चंचल (अस्थिर) अधिकारों को पाकर यदि शत्रुओं का अपकार न किया, मित्रों का उपकार न किया और भाई बंधों का भी उपकार न किया तो उसने क्या किया अर्थात् कुछ नहीं किया।

अच्युत चरण तरङ्गिणि, शशि शेखर मौलि मालती माले।
ममतनु वितरण समये, हरता देया न मे हरिता॥ ८॥

अर्थ—रहीम गंगाजी से प्रार्थना कर रहे हैं कि विष्णु भगवान के चरणों से प्रवाहित होनेवाली हे गङ्गे! मुझे तारने के समय शंकर बनाना, जिससे मैं तुम्हें सिर पर धारण कर सकूँ, विष्णु मत बनाना।

[1]भगवति मुनिकन्ये तारये[2] पुण्यवन्तं,
स्तरति निज पुण्यैस्तत्र किन्ते महत्वम्।
यदिह यवन जातं पापिनं मां पुनीहि[3]।
तदिह तव महत्वं तन्महत्वं महत्वम्॥९॥

अर्थ—हे गंगाजी! पुण्यवानों को तारना, जो अपने पुण्य के प्रताप से ही तर जाते हैं, इसमें तुम्हारा क्या महत्व है। यदि यवन से

पाठा० ९—१ सुर धुनि, २ पुण्यवत मुनीचे,
३ पुनातु।

उत्पन्न हुये (मुझ) पापी को तारो तो तुम्हारा महत्व भी है। यही मह
महत्व है।

पाठक! मुसल्मान होते हुए भी रहीम के ये भाव कितने सम
हृदयग्राही और भक्ति-पूर्ण हैं।



टिप्पणियाँ

दोहावली

१—हैरान = खो जाना, लीन हो जाना।

अर्थ—यह तो सब जानते हैं कि समुद्र में बूँद समा जाती है, पर बात थोड़े ही जानते हैं कि समुद्र बिन्दु में समा जाता है। अतः म कहते हैं कि इस आश्चर्य को कौन किस से कहे, क्योंकि खोजने ग तो अपने आप ही में लीन हो जाता है।

२—अगम्य (अ + गम्य) जहाँ तक किसी की पहुँच न हो अर्थात् वर।

३—काहि = किसको।

४—जननी-जठर = माता का पेट।

५—पाँखू = डैना, पर। बाज = एक शिकारी चिड़िया। साहेब = मालिक, ईश्वर।

६—व्याधि = रोग। भेषज = दवाई।

७—संतत = सदैव। सुधि = खबर।

९—दीन लखै सब जगत को = दीन सब संसार को देखता है, अर्थात् सब का मुँह ताकता है।

१०—उपाधि = उपद्रव, झगड़ा। तिहिँ = उसने। बादि = व्यर्थ।

११—खरि = खली। गुरु = गुड़। गुलियाये = गोली बनाकर।

१२—जगत उधार कर = संसार से पार होने का।

१३—पूरन = पूर्ण। परम् गति = मोक्ष। धोखे आव से = भूल से। पावत को—धाम = काम क्रोध आदि में सदैव फँसा रहने वाला भी पूर्ण मोक्ष पा जाता है।

१४—जम के किंकर = यमदूत । कानि = लिहाज, मर्यादा ।

१५—मुकरि = इनकार । मङ्गन = भिखारी ।

१६—कही सुनै = कही हुई सुनते हैं ।
सुनि दुख हरैं = सुन कर दुख दूर करते हैं ।

१७—नेवाज = रक्षक ।

१८—अर्थ—हे रघुबीर जब हाथी पर गाढ़े दिन थे, अर्थात् गज-ग्राह युद्ध में जब वह डूबने पर था, उस समय आपकी ही उसने प्रार्थना की थी, वही (प्रार्थना) मैं इस समय कर रहा हूँ, क्योंकि अच्छे दिनों के सभी मित्र होते हैं, बुरे दिन आने पर आप ही सहायता करते हैं ।

करी = कर रहा हूँ । करी = की है । करी = हाथी । तीर = किनारा, यहाँ जल के किनारे से मतलब है । गाढ़े दिन = अच्छे दिन । गाढ़े दिन = बुरे दिन ।

१९—अर्थ—रहीमजी अपने ही को संबोधन करके कह रहे हैं कि—हे रहीम ! तू ने अपने मन को सुन्दर चकोर बना डाला है । चकोर सदैव चन्द्र पर दृष्टि रखता है और तेरा मन-चकोर श्रीकृष्णचन्द्र में लगा रहता है ।

चकोर = एक पक्षी का नाम है । यह अपने दो गुणों के लिये कवि जगत् में प्रसिद्ध है । एक चन्द्रमा की ओर देखना दूसरे अँगार खाना ।

२०—पत = इज्जत ।

ज्वारी = जुआ खेलने वाला, श्री कृष्णजी ने शकुनी और कौरवादि जुआरियों से पाँडवों की रक्षा की थी ।

चोर = ब्रह्माजी । जिन्होंने ग्वाल-बालों और गायों का हरण किया था जिनसे उन्हें श्रीकृष्णजी ने ही छुड़ाया था ।

लबार = दुशासन आदि इन कौरवों से द्रोपदी की रक्षा की थी ।

२१—अर्थ—रहीमजी कहते हैं, यह सभी जानते हैं कि लक्ष्मी चला है। क्यो न चचल हो, आदिपुरुष (नारायण) की स्त्री है न !

वृद्धावस्था में विवाह करनेवालो को इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

पुरुष पुरातन = आदि पुरुष (नारायण)

२२—फजीहति = दुर्दशा।

नोट—पर स्त्री या पूज्य स्त्री को अपनी स्त्री समझनेवालो की अवश्य दुर्दशा होती है।

पाठक २१, २२ न० के दोहों को ध्यान पूर्वक देखेंगे तो पता चलेगा कि जो भाव व शब्दो का ओज २१ न० के दोहे में है यह २२ न० के दोहे में नहीं है। सभव है यह रहीम का न हो, किसी अन्य कवि का हो—अब रहीम की छाप आ जाने से रहीम की सम्पति मानी जाती हो।

२३—अर्थ—प्रश्न यह है कि चन्द्रमा में श्यामता क्या है ? इसके उत्तर में रहीमजी कहते हैं कि चन्द्रमा के नीच खानदान को तो देखो ! इसके बाप का कोई पानी तक नहीं पीता है। यह तो पूरा स्याह धब्बा ही होता अगर इतने रुतबे को न पहुँचता। यह बड़ा आदमी हो गया है, आकाश तक इसकी पहुँच है, इससे स्याही घुल गई है, पर असलियत कहाँ जावे। कुछ श्यामता अब भी शेष है।

तेहि कै गहल अकास लौं = उसकी आकाश तक पहुँच है।

२४—अर्थ—नाव जल प्रवाह के साथ तो आसानी से बही चली जाती है पर प्रवाह के विपरीत ले जाने में उस रस्सी से खींचना पड़ता है। अत रहीमजी कहते हैं कि ऐ मनुष्य, इस ससार रूप जल-प्रवाह में शरीर रूप नौका कर्मवश बही जा रही है। उस ओर (परमात्मा की ओर)

खींच अर्थात् मन रस्सी को परमात्मा से बाँध (लगा) और फिर इस शरीर रूप नौका को बजाय संसार-प्रवाह में बहने देने के परमात्मा से मिला।

उहि ओर = उस ओर अर्थात् परमात्मा की ओर। जल में उलटी नाव ज्यों = जैसे जल प्रवाह के प्रतिकूल नाव चलाने में। गुन = रस्सी।

२६—अर्थ—जहाँ अहंकार (अहम्) होता है वहाँ परमात्मा का वास नहीं होता और जहाँ परमात्मा का वास है वहाँ फिर अहङ्कार नहीं रह सकता। अत रहीमजी कहते हैं कि रास्ता तंग है दोनों का गुजर एक साथ नहीं हो सकता। आप, आपन = आपा, अहंकार।

२७—आन = और, दूसरा। बिलग = अलग।

२९—अर्थ—कवि ने इस दोहे में तीन भावों पर तुलनात्मक विचार किया है। देखिये —

रहीम कहते हैं कि यदि मैं आँखों में अंजन लगाता हूँ, अर्थात् आर्य भाव से ईश्वरोपासना करता हूँ तो कष्टसाध्य है (यहाँ कवि का आशय योगादि क्रियाओं से है जिनका प्रयोग करना कठिन होता है, अंजन आँखों में लगाने से कुछ किरकिरापन भी मालूम होता है), और सुरमा लगाता हूँ, अर्थात् मुसलमान प्रणाली से आराधना करता हूँ तो मन अनिच्छा प्रकट करता है, अर्थात् ठीक ढंग प्रतीत नहीं होता। अत जिन नेत्रों से हरियाली अर्थात् हरि (भगवान्) के दर्शन होते हैं उन्हीं नेत्रों पर मैं निछावर हो जाता हूँ।

विशेष—अंजन, सुरमा और हरि (हरियाली) तीनों नेत्रों की सुख कारक वस्तुएँ हैं। अंजन और सुरमा का सूक्ष्म रूप होता है अत आँखों में लगकर दिखाई नहीं देते। हरियाली स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है और उसको देखकर आँखों को शान्ति भी मिलती है। हरियाली को वैद्य और डाक्टर दोनों ने आँखों के लिये उपयोगी बताया है।

इस भाव से लक्षणों द्वारा सगुण हरि की उपासना को निर्गुण ईश्वरोपासना (चाहे वह आर्ष प्रणाली से हो अथवा यावनी प्रणाली) दोनों से उत्तम ठहराया है।

रहीम के अन्य कथनों से भी इसी भाव की पुष्टि होती है।

अब कवि की तीव्र दृष्टि का तो विचार कीजिये कि इस छोटे से एक दोहे में तीन प्रकार के महान सिद्धान्तों पर तुलनात्मक विचार करके अपनी भावनानुसार अंतिम निर्णय कितनी सुन्दरता से कर दिया है! कविता के भाव की उत्कृष्टता चरम सीमा को पहुँची हुई है।

अंजन = संस्कृत आर्ष शब्द और आँखों में लगाने की एक दवा का नाम है जो काजल आदि से बनाया जाता है।

सुरमा = फारसी भाषा का शब्द है, यह भी आँखों में लगाया जाता है।

हरि—पौराणिक संस्कृत शब्द है और यहाँ हरियाली और भगवान दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

१०—अर्थ—जब प्राण समाधिस्थ होकर पवित्र परा के अन्दर जाकर ठहर जाते हैं तब तीनों वृत्तियाँ (पश्यन्ति आदि) निश्चल हो जाती हैं और मन, बुद्धि, अहंकार शुद्ध होने से आत्मा ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर पवित्र हो जाता है।

कवि के उच्च कोटि के वेदान्त ज्ञान को तो देखिये!

तुरिय—वह अवस्था, जिसमें जागृति, सुप्ति और सुषुप्ति तीनों का मेल हो अर्थात् समाधि।

तिय—तीन (पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी)।

अम—पवित्र।

परा—तीनों गुण (सत, रज, तम) से रहित।

३०—अर्थ—रहीम जी कहते हैं धर्म के लिये पड़कर अपना शरीर खपा देना, मर जाना और कठिन कलेस सह लेना अच्छा है क्योंकि यह तो आप का उपदेश है। पर क्षमा कीजियेगा प्रभो! धर्म पर सब कुछ अर्पण करनेवाले राजा बलि को आपने 'वामन' रूप धारण करके छला! प्रभो, आचरण द्वारा आपने यह अच्छा उपदेश दिया!!

कैसी मधुर चुटकी है! "ऊंच निवास नीच करतूती" वालों की कैसी मीठी भर्त्सना है! "पर उपदेश कुसल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे" का क्या ही मार्मिक चित्र खींचा गया है!

३३—अर्थ—रहीमजी कृष्णचन्द्रजी को उपालम्भ देते हुए कह रहे हैं कि मोहन! यह आपकी प्रीति की रीति अनोखी है। आपकी प्रीति क्या है, आकाशी दिया है। अपनी ओर खींचने से आप दूर भागते हैं, परन्तु ढील दिखाने से आप पास ही आ उपस्थित होते हैं, अर्थात् जब भक्त आप से मिलने का प्रयत्न करता है तब आप दर्शन नहीं देते हैं और जब ही वह आप से खिंच बैठता है, आप सामने आ उपस्थित होते हैं।

विशेष—कहते हैं कि रहीमजी एक बार कृष्ण-दर्शन के लिये वृन्दावन गये थे पर मुसलमान होने के कारण इन्हें मन्दिर में नहीं घुसने दिया गया। अत यह क्रोधित हो घूमकर बैठ गये। तब श्रीकृष्णचन्द्रजी ने इन्हें स्वयं दर्शन दिये जिस पर इन्होंने यह दोहा कहा था।

बसदिया = आकाशी दिया, कार्तिक मास में लोग प्रत्येक रात्रि को एक खड़े हुये बाँस के ऊपर डोरी के सहारे दिया टाँगते हैं। यह दिया डोरी खींचने से ऊपर चढ़ जाता है और डोरी ढीली करने से नीचे आ जाता है।

३४—अर्थ—जब इन्द्र ने ब्रज पर कोप करके मूसलाधार जल बरसाना प्रारंभ किया था तब श्रीकृष्णचन्द्रजी ने गोवर्द्धन पर्वत उठाकर

इसके नीचे ब्रज-वासियो की रक्षा की थी, पर जब वही ब्रज-रक्षक श्रीकृष्ण चन्द्रजी ब्रज को त्यागकर द्वारका जा बसे तो ब्रजबालाओं की ओर से उपालम्भ देते हुए रहीमजी कहते हैं—हे गोपाल (कृष्ण) ! अगर ब्रज की ऐसी ही अवस्था करनी थी अर्थात् सूना ही छोड़ना था तो गोवर्द्धन पहाड़ उठाकर पहले उसकी रक्षा ही क्यों की ! आपका कष्ट उठाना व्यर्थ था और हम से यह कष्ट उठाया नहीं जाता।

हवाल = दशा। नाहक = व्यर्थ, बिना प्रयोजन

३५—पूर = चढ़े हुए, रक्खे हुए।

३६—अर्थ—रहीमजी कहते हैं कि मनुष्य इस शरीर के मोह को ! छोड़ सकता है जिसमें नेत्र रूपी दो दीपक सदैव जलते रहते हैं और न प्रकाश मे सासारिक पदार्थों की सुखकारी छटा का ज्ञान कराते रहते जब कि एक दीपक अधकार का नाश करके दीपक-युक्त स्थान के सब र्थों को प्रकट कर देता है।

३७—मनुआ = मन। नाँय = नहीं।

३८—मनुष्य को इच्छाओं का दास नहीं होना चाहिये।

मनसा = इच्छाएँ।

नोट—पाठक नं० ३७ और ३८ के दोहों को यदि ध्यानपूर्वक गे तो पता चलेगा कि जो शब्द-योजना व भाव की उत्कृष्टता नं० ३८ दोहे में है वह नं० ३७ के दोहे में नहीं। सभव है, नं० ३७ का दोहा हीम का न हो।

३९—केतिक = कितनी। बिहाय = व्यतीत होना।

अन्त = मृत्यु-समय।

४०—भेषज = औषधि। समरथ = समर्थ।

४१—भार = बोझ (माया का बधन)। भार = भाड़, आग की भट्टी

४२—अर्थ—रहीमजी कहते हैं कि चरण छुए अर्थात् अनेक प्रकार से अनुनय विनय की और मस्तक छुये अर्थात् सांसारिक ज्ञान प्राप्त कर विचार किया परन्तु माया ने पिण्ड नहीं छोड़ा। जैसे ही ईश्वर न हृदय छुआ अर्थात् ईश्वर ने हृदय में वास किया वैसे ही माया ने साथ छोड़ दिया। माया ईश के आधीन है।

४३—धूरि = मिट्टी। पूरि = पूर्ण।

विशेष—बहुधा ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि हवा और मिट्टी की एक गाँठ सी बँध जाती है। इसे लोग बगूला या बवण्डर कहते हैं। यह बहुत दूर तक चक्कर खाता शीघ्रता से उड़ता चला जाता है, आस-पास के तिनके और कागज आदि भी इसके चक्कर में पड़ कहीं के कहीं जा पड़ते हैं, पर जैसे ही हवा और मिट्टी की गाँठ खुली फिर केवल मिट्टी ही मिट्टी रह जाती है। रहीमजी ने यही भाव मनुष्य शरीर पर घटाया है जिसमें हवा मिट्टी आदि का संयोग है। पाठक कवि की पैनी निगाह को तो देखिये!

४४—पूतरा = पुतला। वाय = वायु, हवा।
नमी = सील, सर्दी

नोट—नं० ४४ और ४५ के दोहे समानार्थक हैं। नं० ४५ केवल भरती का ज्ञात होता है। संभव है, यह रहीम का न हो।

४६—अर्थ—देव, गंधर्व, इन्द्रादि लोक केवल भोग्यलोक माने जाते हैं, अर्थात् वहाँ पर जीव अपनी करणियों का फल भोगते हैं कुछ कर्म नहीं करते हैं। परन्तु यह संसार, जो मृत्युलोक कहलाता है इसमें प्राणी भोगता भी है और करता भी है, इसीसे इसको कर्मक्षेत्र भी कहा जाता है। देवादि भी पुण्य क्षीण होने पर इसी लोक में जन्मते हैं। कर्म होने के कारण इसी लोक से मुक्ति मिल सकती है और लोकों से नहीं। इसीसे रहीमजी ने कहा है कि यह संसार एक बाजार है जिसमें

पुण्य ही सौदा है। अतः ऐ मनुष्यो ! जो सौदा तुम्हें खरीदना है अर्थात् जो कर्म करने हैं कर लो। आगे जाकर फिर सौदा नहीं मिलेगी और लोका में तो केवल भोगना ही भोगना है। रास्ता भी दूर का तै करना है। न जाने फिर कब इस कर्मक्षेत्र में आने का सौभाग्य प्राप्त हो।

सौदा = चीज वस्तु अर्थात् पाप पुण्य।

हाट = बाजार अर्थात् जगत। बाट = रास्ता।

४७—अर्थ—रहीमजी कहते हैं—इस संसार में दिन-रात कूच का नगाड़ा बजता रहता है और हर घड़ी इस पड़ाव से मुसाफिर कूच करते रहते हैं। इस संसार में आकर क्या कोई अब तक मुकाम करके ठहरा हुआ दिखाई देता है? यह जगत् तो आवागमन का क्षेत्र है।

आठो जाम = आठो पहर अर्थात् दिन-रात।

४८—अर्थ—संसार में यही नियम दृष्टिगोचर हो रहा है कि पहिले फूल लगता है तब उसी जगह फल लगता है। पर रहीमजी ने इस दोहे में अमगति अएकार की अनोखी छटा दिखलाई है। रहीमजी का भाव सुनिये —

रहीमजी कहते हैं कि काम माली ऐसा चतुर है कि पहिले उसने राधिका के उर पर फल (कुच) लगाये तब उन्हें देखकर कृष्णजी के उर में फूल (आनन्द) हुआ। यही तो चमत्कार है कि फल पहिले लगे और फूल पीछे। सो भी एक यहाँ तो दूसरा वहाँ!

४९—कुचों का अग्रभाग (मुख) काला क्यों होता है?

रहीम से सुनिये —

जो अनुचित कार्य करनेवाले हैं वह अंत में दागी हो ही जाते हैं अर्थात् अनुचित कार्य का परिणाम अच्छा नहीं। इसी से रहीम जी कहते

हैं कि कुच दूसरों के हृदयों को गेघते (साल्ते) हैं अत उनका मुंह काला होना ही चाहिये ।

अक = पाप, अपराध, चिन्ह । परिनाम = अंत

५०—रहीमजी कहते हैं मन-महाराज का आँखों के समान दीवान और कोई नहीं हैं । आँखें जिसे देखकर रीझती हैं, बस मन-महाराज भी उसके हाथ बिक ही जाते हैं । ठीक ही है । नफे-नुकसान का जिम्मेदार दीवान है, मन महाराज तो कौंस्टीट्यूशनल महाराज हैं !

५३—रहीमजी कहते हैं कि नैनों में तो नमक है और अधरों में मधु । अत दोनों में किसको कम दरजे का बतलावें यह जरा टेढा सवाल है क्योंकि मीठे पर नमकीन अच्छा लगता है और नमकीन पर मीठा । एक से तृप्ति नहीं होती । दोनो चाहिये दोनों !

५४—बाँकी चितवन = तिरछी नजर । गर्मी = जलन, ताप पाठक देखें, कवि ने कटाक्ष के वर्णन में कैसा कमाल किया है !

सलोने = सुन्दर, नमकीन

५५—सूर्योदय होने पर कमल विकसित होकर पितहिं (जल को अपनी पंखुड़ियों से ढककर सूर्य-ताप से रक्षा करता है और चन्द्रोदय होने पर सिकुड़कर उसे (जल को) चन्द्र किरणों की शीतलता देकर आनन्दित करता है । सुपूत कमल तो अपने पिता के सुख हेतु ही विकसित होता और सिकुड़ता है—उसका न कोई शत्रु है और न मित्र ।

कवियों ने सूर्य को कमल का मित्र और चंद्रमा को शत्रु माना है, पर रहीमजी की उक्ति सब से निराली और अनोखी है ।

कुल-कमल = कुल श्रेष्ठ, सुपूत ।

५६—सहिं के = जानबूझ कर । बेसाहियो = बेसाहना, खरीदना मोल लेना । चैन = आराम ।

५७—विरहिणी नायिका के हृदय को विरह ने अधकारमय बना डाला है। अवधि बीतने पर नायक से मिलना होगा, बस यही एक आशा उसके अँधेरे हृदय में रह-रहकर चमक जाती है। जैसे भादो की अँधेरी रात में रह रहकर जुगनू चमक उठते हैं।

विरह अधकार के घनत्व को आशा-खद्योत कहाँ तक दूर कर सकती है, यही विचारणीय समस्या है।

६०—सुलगे = जले। बुझि-बुझि = ठंढे हो होकर। बुझि गये = ठंड हो गये।

६१—भस्म को लोग पानी में घोलकर लगाते हैं, पर वह सूखकर लगे हुए स्थान को भी रूखा कर देती है। इसी से रहीमजी कहते हैं कि यह मन तो बनाय (बिल्कुल) जल भुनकर भस्म हो गया है क्योंकि इसको जिससे लगाइये वही रूखा हो जाता है।

बनाय = बिल्कुल।

६२—विलोकतहिं = देखते ही। थाक्यो = थक जाता है। ताकहिं = देखते ही। आप—मन के लिये कहा है।

६४—सम्पति सुचहि = धन इकट्ठा करते हैं।

६५—पौंटनवारी = पीसनेवाली।

६६—पारै बीच = आलस्य करना, ढील डालना। महावरा—बीचु न परै पावै।

सिवि और दधीच की कथा पुराणों में विस्तार पूर्वक वर्णन की गई है। सिवि काशी के राजा थे। वह यज्ञ-स्थान में आये हुये कबूतर के रक्षार्थ अपना सिर तक देने को उद्यत हो गये थे। तब भगवान ने प्रसन्न हो इन्हें अपने लोक भेज दिया था। दधीचि मुनि थे। इन्होंने देवताओं के

रक्षार्थ अपना शरीर त्याग दिया था। इनकी हड्डी से वज्र बनाया गया जिस से वृत्तासुर मारा गया था।

६७—गाढ़े = कठिन समय में। थाँमैं = थामती हैं, खड़ा रखती हैं। बरहि = बरगद को।

बरेह = वट-वृक्ष की जटाओं को बरेह कहते हैं।

६८—गोत = वंश। बड़री = बड़ी।

६९—मृग = हरिण, चन्द्रमा के रथ में हरिण जुते हैं। खनत = खोदते हैं।

वाराह = सुअर। पुराणों में वाराह के दाँत पर पृथ्वी स्थित बतलाई गई है।

७०—धीम = कम, न्यून। रुचै = अच्छा लगना।

७१—नाद = स्वर, गाना। रीझि = प्रसन्न होकर।

७२—दर दर = दरवाजे-दरवाजे। मधुकरी—सात घर से खाने के लिये माँगने की वृत्ति को कहते हैं।

विशेष—ऐसा ज्ञात होता है कि यह दोहा कवि ने बादशाह की अप्रसन्नता के समय जब वह दीनावस्था में अपना निर्वाह कर रहा था याचकों से कहा था।

७३—दानि = दानी। दरिद्र तर = दरिद्री से दरिद्री। खनावत = खुदवाते हैं। सरितन सूखी परे = नदियों के सूख जाने पर।

विशेष—नदी जब सूख जाती है तो उसके तट वासी उसकी धार में गढ़े खोद लेते हैं। उनमें पानी निकलता है, जिसको वे अपने काम में लाते हैं। कवि ने इन्हीं को कुआ बताया है।

इस दोहे से रहीम के भाव दानी के प्रति कितने उच्च ज्ञात होते हैं।

७४—केवल शारीरिक बल से लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती। लक्ष्मी प्रा

करने के लिये और भी साधन चाहिए। अगर ऐसा न होता तो क्या भीम के समान बली पुरुष राजा विराट के घर अपना पेट भरने के लिये रसोइया का काम करता।

जब पाँचो पाँडव १३ वे वर्ष गुप्त भेष में राजा विराट के यहाँ रहे थे तब भीमसेन ने रसोइया का रूप धारण किया था।

७५—सुहाइ = अच्छा लगना। रुच = चाहे।

७६—संभु भये जगदीस—समुद्र मथन के समय सबसे प्रथम हलाहल विष निकला था जिसकी गर्मी से संसार में त्राहि त्राहि मच गई तब महादेव जी से प्रार्थना की गई उन्होंने उसे पी लिया और जगदीस कहलाये।

राहु कटायो सीस—अमृत वितरण के समय जब छल से देवता रूप धारण कर राहु ने अमृत पी लिया तब भगवान ने चक्र से उसके दो टुकड़े कर दिये जो राहु तथा केतु कहलाये।

७७—रहिला = चना।

७८ = पानी = मान, जल, आब। सून = सूना, शून्य। ऊबरै = अच्छा त होना।

७९—समूच = पूरा पूरा, यथोचित। ढील = कमी।

८०—पयान (प्रयाण) = प्रस्थान, चलने का उद्योग।

८१—भरम = प्रतिष्ठा, गौरव। गँवाइ कै = खोकर।

८२—धीम = लुप्त। प्रभुता = ऐश्वर्य, बड़प्पन।

८३—ढिंग = पास। बसे रहे कछु नाहिं = बन रहना व्यर्थ है।

८४—घर = धड़। खेत = क्षेत्र, भूमि।

८६—का थान = क्या थान। चिथरन = फटे कपड़े। मोहात = ा देती है।

८७—दुख सहि जिये बलाइ = दुख सह कर कभी न जीना चाहिये।

महावरा—"दुख सहकर मेरी बलाइ जिये"

८८—अर्थ—रहीम जी कहते हैं कि हे सज्जनो, पन्नगबेलि और पतिव्रता स्त्री से रति (प्रेम) की इच्छा करना बड़ा ही नाज़ुक है। तुषार के प्रेमालिंगन को सहन न करके पन्नगबेलि बेचारी स्वयं जल मरती है। परन्तु सती से कलुषित प्रेम की इच्छा करनेवाला पुरुष ही भस्म हो जाता है।

रति = प्रेम — इच्छा। पन्नगबेलि = पान की बेलि। सत = सतीत्वपन। दहियात = जलजाता है।

८९—काढ़िये = निकालिये। भेद = रहस्य।

९०—प्रमान = मर्यादा। उमड़ि चलैं = उमड़ चलना, बढ़ कर बह निकलना। पार = पाड़, किनारा।

९१—अति = ज्यादती, मर्यादा का उल्लंघन। क़ानि = मर्यादा।

अर्थ—रहीमजी कहते हैं कि मनुष्य को अति कभी न करनी चाहिये। अपनी मर्यादा पर सदैव कायम रहना चाहिये। देखो सहिजन के वृक्ष में फूल बहुत आते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि लोग अप शकुन समझकर डाल-पत्तो-समेत काट डालते हैं।

९२—अघाय = अघाकर, पेट भर के।

९३—रहीम इस दोहे में कटुवादियों की सजा तजवीज करते हैं।

९४—कुल्हार = कुल्हारी। टूक = टुकड़ा। कसकत रहै = सालती रहै। हूक = आन्तरिक दुख।

९६—भोग = भोजन। सफरिन = मछलिया मे। बक = बगुला।

९८—राजा तो गुणियों को छोटा समझता है और गुणी राजा को छोटा समझते हैं, परन्तु रहीमजी कहते हैं कि ऊँचे आकाश से लेकर नीची पृथ्वी तक देखो तो सब एक ही माया है अर्थात् उस परमात्मा की

उसी का ही चमत्कार है। यहाँ न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। उसी परमात्मा ने किसी को राज दिया है और किसी को गुन।

९९—नियहत = निबाहना, पूरा करना। मैन-तुरग = मोम का घोड़ा।

१००—मँझाव = मझधारना, चलना। डिगिहा = डगमगेहै, हिलेगा।

१०१—धागा = डोरा। चटकाइ = चटकई, जल्दी।

१०२—मछली का प्रेम पानी से है, अतः मारकर काटे जाने पर जल से ही स्वच्छ होती है और पकाकर खाये जाने पर भी (प्यास के मिस) पानी ही की इच्छा रखती है।

१०३—हरदी और चूना मिलकर लाल रंग बन जाता।

१०४—अँगवहि = झेलते हैं, अपने ऊपर सहते हैं।

१०६—खानि = भंडार। रस = रस, आनन्द। प्रीति में गाँठि ही हानिकारक है।

१०७—लेन देन के प्रीति = बजारू प्रीति। दानी = दाँव।

१०८—ढेकुली = सिँचाई के लिये कम गहरे कुएँ से पानी निकालने का एक यंत्र जिसमें एक ऊँची लकड़ी के ऊपर एक आड़ी लकड़ी बीचों बीच इस प्रकार ठहराई रहती है कि इसके दोनों छोर बारी बारी से नीचे ऊपर हो सकते हैं। इसके एक छोर में मिट्टी छोपी या पत्थर बँधा रहता है और दूसरा छोर जो कुएँ के मुँह की ओर होता है, डोली की रस्सी बँधी होती है। यह मिट्टी या पत्थर के बोझ से डोल कुएँ में से बाहर आता है।

सूचना—ढेकुली छोटी-छोटी कम गहरी कुइयों में चलायी जाती है और घड़िया का पानी अपनी ओर न ढालकर दूसरी ओर ढालते हैं, अतः

दूसरी ओर बैठे मनुष्य की ओर से ढालनेवाले के प्रति यह उक्ति है।

पाठक देखें दृष्टान्त का कैसा अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है!

१०९—रेत = बालू।

११०—टेरि = पुकार। हेरि = दिखाई देता है।

१११—जब कछु अटकै काम = जब कछु काम पड़ै।

११२—मडये—तर कै गाँठि = विवाह-मडप के नीचे वर वधू के वस्त्र को मिलाकर जो गाँठ लगाई जाती है।

आठ गाँठि = सम्पूर्णरूपसे, सब तरफ से।

आठ गाँठि एक महावरा है। खुशहाल व्यक्ति आदि के लिये इसका प्रयोग निम्न प्रकार करते हैं—

"भाई फलाने का बनौका आठो गाँठ बना है।

बुरे भाव में भी प्रयोग करते हैं—

"आठो गाँठ कुम्मैत ह"

११३—सरवर = बराबरी, समता। चातक = पपीहा।

प्रेम पपीहा का सा होना चाहिये।

११४—वर्षा ऋतु मे कोयल का मौन साधना (न बोलना) तो सभी जानते हैं पर कहना कवि ही जानते हैं। देखिये, रहीमजी कोयल के न बोलने का कारण दादुरों का बोलना बताते हैं। कैसी रहस्यमय खोज है!

पावस = वर्षाऋतु। दादुर = मेंढक। वक्ता = बोलनेवाले।

११५—रहीमजी कहते हैं कि मन्द प्रकृति के लोगों को मारने से भी उनके अवगुण गुण में परिणत नहीं हो जाते। जैसे बाघ को कूटने में उसकी पेठन पक्की पड़ती है और वह कड़ता भी है। ऐंठ जाता नहीं, उल्टा पक्का पड़ता है और बढ़ता है। पाठक देखें, अकबर के सेनापति और वजीरे आजम की पैनी निगाह कहाँ तक पहुँची है!

सिराहिँ = होना, बन पड़ना। बाध = मूँज की डोरी, बान। मुरहा = ऐंठनदार। मुरहा ह्वै = ऐंठनदार होकर। अधिकाहिँ = बढ़ जाते हैं।

विशेष—"मूँज चकोठा और गँवार, जैसेइ कूटो तैसेइ सार" अर्थात् मूँज को जितना ही कूटो उतनी ही वह मुलायम हो जाती है। इसी से बान बनाने के लिये मूँज को खूब कूटते हैं, फिर उसमे बान बटते हैं। बट जाने पर पानी में भिगोकर फिर कूटते हैं जिससे बटने से जो ऐंठन पड़ती है वह इकसाँ बैठ जाती है और रस्सी पकी हो जाती है। और ऐंठन के कारण जो सिकन पड़ी हुई होती है वह निकल जाती है और बान बढ़ कर अपनी पूरी लम्बाई को प्राप्त हो जाता है।

११६—सहज धरि खाइ = स्वभाव ही से काट खाते हैं, अर्थात् काटना प्राकृतिक गुण है।

११७दिया = दीपक। नाँद = चौपायों के चारा रखने का बर्तन, ब्याह शादियों आदि के समय इस बर्तन में कढ़ी अथवा साग-तरकारी भी रखते हैं।

विशेष—कुम्हार मिट्टी को अच्छी तरह बनाकर चाक पर रखता है। चाक में एक छेद होता है। उसमें लकड़ी डालकर पहले वह खूब घुमा देता है जिससे चाक देर तक चक्कर काटता रहता है और चाक के घूमते समय उस पर रखी हुई मिट्टी से मन चाही चीज बना लेता है।

११८—मृगया अनुराग = शिकार में प्रेम।

भ्रमत = घूमता फिरता है।

११९—पत्थर को पानी में डालने वह भीग तो जाता है परन्तु अन्दर से तर नहीं होता (गलता नहीं)। अत रहीमजी कहते हैं कि यही दशा मूरख के [illegible] की भी है। उसकी अकल पर सदा पत्थर ही पड़े रहते हैं। [illegible] है परन्तु उसकी ज्ञान दृष्टि को सूझता कुछ भी नहीं, वह कोई लाभ नहीं उठा सकता।

पखान = पत्थर। सीझै = सीझना, तर होना। बूझै = समझना। सूझै = दिखना।

१२०—कचन = वालों। बिसेखि (विशेष) = अधिक

१२१—रहीमजी पेट को सम्बोधन करके कहते हैं कि—भई पेट, तुम पीठ होते तो अच्छा होता, क्योंकि भूखे रहने से तो तुम लोगों में स्वाभिमान का नाश करते हो और भरे होने पर दृष्टि को बिगाड़ते हो अर्थात् जिनको माल-मसाला खाने को मिलता है वह पर स्त्रियों पर कुदृष्टि डालते हैं और जिन्हें पेट भर खाने को नहीं मिलता वे मान-मर्यादा का ख्याल न करके इधर-उधर खीसें काढ़ते फिरते हैं।

१२२—रहीम जी कहते हैं मैंने इस पेट को बहुतेरा समझाया कि अगर तू बिना खाये रहे तो किसी की क्या मजाल कि नाराजगी दिखावे। सच है, यह पेट ही सब कुछ सहाता है।

अनखाये = बिना खाये। अनखाय = नाराज हो।

१२३—हाथी के दो दाँत निकले होते हैं यह तो सभी जानते हैं, पर उन्हें शिक्षा की सामग्री बनाना कवि ही जानते हैं —

रहीमजी कहते हैं कि बड़े पेट के भरने में दुख भी बड़ा उठाना पड़ता है। देखो न, बड़े पेटवाले हाथी ने इसी दुख से दहल कर दो दाँत बाहर निकाल दिये हैं। बेचारा करे क्या, बड़े पेटवाला ठहरा!

दहरि कै = घबड़ाकर, दहल जाकर।

दाँत निकालना दीनता का द्योतक होता है।

१२४—रहीमजी कहते हैं कि शिकार पर छोड़े हुए बहरी और बाज आकाश तक चढ़कर फिर क्यों नीचे गिरते हैं? स्वतंत्रता प्राप्त करके फिर क्यों उसे खोते हैं? क्या करें बेचारे! पेट बड़ा पापी है!! पेट के लिये

फिर बंधन में आकर पड़ते हैं। (शिकार में से शिकारी थोड़ा हिस्सा उन्हें भी देता है)

१२५—कछु = कुछ। काज सरे = काम पूरा होने पर।

भंउरिन = भाँवरे, फेरा। सिरावत = गिरा देते हैं, डाल देते हैं, ठंडा कर देते हैं।

प्रयोग—

सुभट सरीर नीर चारी भारी भारी जहाँ
सूरन उछाह कूर कादर डरत हैं। 'तुलसी'

१२६—कूर = निकम्मा, अकर्मण्य, सुस्त।

१२७—अन्तरदाव = भीतरी आग, हृदय की जलन। जिहि = जिस पर।

१२८—दहति = जलाती है।

१२९—मुसलमान लोग पुनर्जन्म नहीं मानते हैं, अत रहीम ने पुनर्जन्म को इस रूप में सिद्ध किया है कि स्मृति हो आने से ध्यान में उसका चित्र-रूप नेत्रों के सामने आजाता है। अवतार में प्रत्यक्ष शरीर होता है और स्मृति में संकल्प शरीर।

१३०—कृष्ण को गिरधर कहना और हनुमान को गिरधर न कहना दुनिया की चाटुकारिता का प्रमाण है।

१३१—रहीमजी कहते हैं कि अरे अड ! अपने चिकने चिकने पत्ते देखकर बावला मत बन, अर्थात अधिक गर्व मत कर, हाथियों के धक्के और कुल्हाड़ी की चोटें सहनेवाले वृक्ष दूसरे ही होते हैं।

कैसी अच्छी अन्योक्ति है !

ढका = धक्का। बौढ = उन्मत्त होना, पागल बनना। कुल्हाड़िन = कुल्हाड़ा।

१३२—जब वृद्धावस्था में बाल सफेद हो जाते हैं तो बहुत से

शौकीन खिजाब लगाकर उन्हें काला कर लेते हैं। ऐसे ही शौकीनों को लक्ष्य करके रहीमजी ने लिखा है कि अब थोड़ी सी जिन्दगी के लिये कौन मुँह काला करे। काला मुँह तो उन्हें करना चाहिये जिन्हें दूसरे की स्त्री छलना हो या बुढ़ापे में ब्याह करने की हविस हो। देखिये, कैसा चुभता हुआ व्यंग है!

कौन करे मुँह स्याह = काला मुँह कौन करे अर्थात् खिजाब कौन लगावे।

१३३—संसारी माया के चकाचौंध में अंधे बने मनुष्य सुन्दर दीनता के आनन्द को क्या जानें? बेचारी दीनता कितनी अच्छी है कि मनुष्य को परमात्मा का स्मरण कराती है और अशरण शरण दीनबंधु को उसका बंधु बना देती है।

१३६—चारा = भोजन। छाला = खाल जैसे मृगछाला।
ज्यों— स्वर देइ = मृदंग के पुड़ों में आटा लगाया जाता है जिससे स्वर अच्छा निकलता है।

१३७—बारे = जलाने से, लड़कपन में। बढ़े = बुझाने से, बड़े होने पर।
कवि की खूबी तो देखिये! बारे और बढ़े—ठेठ हिन्दी के शब्दों द्वारा श्लेष का निर्वाह किया है, जिसके लिये अन्य कवि संस्कृत शब्दों का आश्रय लेते हैं।

१३८—बढ़ो = बरे, जलने से, बढ़ा रहता है—जीवित रहता है।
गये = न रहने से

नोट—सं० १३७, १३८ को ध्यान-पूर्वक देखने से पता चलता है कि नं० १३७ के दोहे के शब्दों में कवि ने चोज पैदा करके जो अपनी प्रतिभा दिखाई है वह नं० १३८ के दोहे में कहाँ है। उसके सामने तो यह दोहा केवल भरती का ज्ञात होता है। सम्भव है, यह दोहा रहीम का न हो।

१३९—बलवान पुरुषों को अपने बल का दुरुपयोग कभी न करना चाहिए। सदैव स्मरण रखना चाहिए कि परमात्मा ने बल दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के लिये नहीं दिया है। देखो, हाथी से अधिक बल किसमें होगा? परन्तु वह कितना नम्र होकर रहता है—अपनी दीनता प्रकट करने के लिये दाँत दिखाता है और नाक रगड़ता हुआ चलता है।

धाक = रौब

१४०—हाथी के सिर पर धूल डालने का कारण रहीमजी यह बताते हैं कि हाथी वह रज ढूँढ़ा करता है जिसके स्पर्श से मुनि-पत्नी (अहिल्या) ने मोक्ष पाई थी। उस रज का स्पर्श करके वह भी मुक्त होना चाहता है।

१४१—नात = सबंध, नातेदारी। गड़हों = छोटी तलाई।

पानि = पानी।

१४२—रोजी = आमदनी।

१४३—समाहि = समाना, प्रविष्ट होना। बे पुरन = बिना पल।

१४४—अनहोनी = जिसकी सम्भावना न हो। बसाय = वस चले, ओर चले।

विशेष—ईश्वर पास रहता है और मिलता नहीं।

१४६—गति = शक्ति। को = कौन। धौं = न जाने। केहि = किसको।

१४७—नमसर-पजर कियो = पृथ्वी से लेकर आकाश तक बाणों का पिंजरा बना दिया।

भवमेप = असीम, बहुत।

अर्जुन ने अपनी माता की पूजा-हेतु ऐरावत हाथी को आकाश से बाणों का मार्ग बनाकर उतारा था और खाडव वन जलाने के लिये उसके ऊपर बाणों की छत बना दी थी जिससे इन्द्र एक बूँद भी पानी की न डाल सके।

१४८—लिलार = माथा, भाग्य। बनारसी = बनारस के रहनेवाले। मगहस्थान = काशी में गंगा के उस पार को मघा की पाटी कहते हैं। लोग कहते हैं, वहाँ मरने से मनुष्य नरकगामी होता है।

१४९—इस दोहे की ध्वनि से प्रकट है कि जीव कर्म करने में स्वतंत्र और फल भोगने में परतंत्र है।

१५०—रहीम कहते हैं इसको खूब विचार लो। भावी ऐसी प्रबल है कि इसने मन को जलाया अर्थात् तंग किया है अत हे, भगवान्! तू इस भावी को जला।

१५१—होनहार प्रबल होती है। तभी तो पाडव जैसे बली और समृद्धशाली व्यक्तियों को भी वन में रहना पड़ा और महाप्रतापी शंभु की अर्द्धांङ्गिनी होकर भी पार्वती जी बाझ सुनी जाती हैं।

गणेश और स्वामिकार्तिक पार्वती के उदर से उत्पन्न हुए नहीं माने जाते।

१५२—आपने हात = अपने वश में।

१५३—विषया = वासना, मोह आदि।

वमन करि = के कर।

१५४—एटी = बुरी। घटि = नीच।

१५५—बाढ़ि = अधिक। मानसर = मानसरोवर।

१५६—भुवन भरत = संसार का पालन करता है।

घटि एउै उलूक = उल्लू नहीं देखै।

१५७—तोयवन्त = पानीवाले।

१५८—विषान = सींग।

१५९—रहीमजी कहते हैं कि जिनको विधना ने ही बड़ा बना दिया है, दूषण कहकर उनको कौन घटा सकता है। चन्द्रमा को क्षीण

कहो, कुनड़ा कहो, परन्तु इसमे क्या ! दूषण होने पर भी तारागणों से तो वह बड़ाही रहता है ।

१६०—पत्थर की भीत अरराकर बैठ गई । अब यही धोखा है कि कौन पत्थर कहाँ किस काम में लगेगा । जो पत्थर एक साथ कधे से कधा लगाये भीत म लगे थे वे अब क्या फिर मिलेंगे ?

भीत = दीवार । अररानी वहि ठाम = अरराकर उसी जगह बैठ गई ।

१६१—निकसति = निकलती है । नाहिं = इनकार ।

१६२—याचकता = माँगने की वृत्ति ।

बावन आँगुर गात से तात्पर्य वामनावतार से है जो बलि से माँगने के लिये भगवान ने धारण किया था ।

१६३—पैग = डग ।

१६४—लघुता = छुटाई, छोटापन । अनूप = बहुत ।

मख = यज्ञ ।

१६५—बिलगाय = अलग हो जाता है । भीर = दुख, विपत्ति ।

१६६—सगे = स्नेही, संबधी । कसौटी = एक प्रकार का काला पत्थर जिस पर सोना परखा जाता है ।

मित्रता के परखने की कसौटी विपत्ति है ।

१६७—छोह = प्रेम ।

१६८—अन्त = अन्यत्र । भाय = प्रेम भाव ।

कहा भौंर को भाय = भौंरे का प्रेम भाव ही क्या है ?

१७०—कदली = केला

१७१—उखारी = ऊख का खेत । रमसरा = उखारी के बीच में एक पौधा जमता है जिसकी पत्ती आँवले की सी होती है पर उसमें रस नहीं होता है ।

१७२—कलारी = शराब बेचनेवाली । मदहि = शराब ही ।

१७३—ओछे = नीच। मैना = इशारा। उरज = स्तन, कुच। उमेठे जाहि = उमेठे जाते हैं, पकड़कर मसले जाते हैं।

१७४—नीर चुरा घरियार। प्राचीन समय में एक बर्तन में पानी भरकर उसमें एक छिद्र-युक्त सम्पुटी (कटोरी) रखते थे। यह सम्पुटी और उसमें का छिद्र इस अन्दाज से बनाये जाते थे जिससे कटोरी एक घंटे में पानी से भरकर डूब जाती थी तब १ घंटा माना जाता था और घड़ियाल बजाया जाता था अर्थात् पानी की चोरी तो सम्पुटी (कटोरी) करती है और पिटता बिचारा घड़ियाल है। राजा-महाराजाओं के यहाँ अब भी इससे कभी २ काम लिया जाता है।

सम्पुटी = कटोरी। घरियार = घंटा।

१७६—करिला = कालोंच, स्याही।

१७८—मुकुताकर = मोती बनानेवाला।

१७९—अँगार = जलता हुआ कोयला। तातो = गरम।
सीरे = ठंडे।

१८१—देवरा = छोटा देव। पड़ो = भैंस का बच्चा।

१८२—सरगपताल = ऊँच-नीच अर्थात् भला-बुरा।
कपाल = माथा, कपार।

१८३—जानि परत = पहचाने जाते हैं, समझ पड़ते हैं।

१८४—चुपकरि रहउ = शांत हो जाओ। दिनन कर फेर = दिनों का चक्कर अर्थात् बुरे दिन।

१८५—घूर = घूरा, वह स्थान जहाँ पर गाँव का कूड़ा करकट डाला जाता है।

१८७—वित = धन। हित = स्नेह।

१८८—स्त्रियाँ आम तौर से दीपक अंचल-पट से ही बुझाती हैं।

१८९—घटि = नीच। रथ-न्हारक = रथ हाँकनेवाले, सारथी।

पाँच रूप पाँडव = पाण्डव जब तेरहवें वर्ष गुप्त रूप मे रहे थे उस समय पाँचों भाइयों ने अपने को छिपाने के लिये अलग-अलग पाँच रूप बना रक्खे थे। यह कथा महाभारत में विस्तार पूर्वक वर्णित है।

रथ-वाहक नलराज = जब राजा नल जुआ में राजपाट सब हार गये थे तब कुछ दिनों के लिये अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के सारथी बन कर रहे थे।

१००—ज्यों लक्ष्मण   पारासर के नाव। इस कथा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है।

१०१—भोर = सवेरा।

१०२—वधिक = शिकारी। रुधिरै = रुधिर ही।

नोट—शिकारी हिरण के बाण मारता है, हिरण भाग खड़ा होता है पर शरीर में चुभे हुए बाण की जगह से जो रक्त बिन्दु रास्ते में गिरते जाते हैं उनसे शिकारी को हिरण के मार्ग का पता चल जाता है अर्थात् जो रक्त, बाण लगने के पहले हिरण का पोषक था वही अब शिकारी को मार्ग बताता हुआ भक्षक बन रहा है। इसीसे रहीम ने कहा है कि विपत्ति के समय दोस्त भी दुश्मन बन जाते हैं।

१०३—अवधनरेश = महाराजा रामचन्द्र

नोट—रीवाँ-नरेश चित्रकूटपति कहे जाते हैं, क्योंकि उनके पूर्वजों ने प्रथम चित्रकूट पर ही अधिकार किया था।

यह दोहा रहीम ने एक याचक को संतुष्ट करने के लिये रीवाँनरेश को लिखा था, क्योंकि इस समय बादशाह की अप्रसन्नता के कारण इनकी हीनावस्था थी।

१०६—पामरी = नीच, तुच्छ। कामरी = कम्बल। जाड़ = जाड़ा।

१०७—भरम = मान, प्रतिष्ठा, गौरव।

नोट—एकबार कवि गंग ने रहीमजी को निम्नाङ्कित दोहा लिख कर भेजा था —

सीखे कहाँ नवाब जू ऐसी देनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचे करौ, त्यों त्यों नीचे नैन॥

इसी के उत्तर-स्वरूप रहीमजी ने यह दोहा कहा है जिससे आपके चित्त की निरभिमानता का पता चलता है।

१९८—अम्बुज = कमल। अम्बु = पानी।

१९९—महात्मा तुलसीदास के कथनानुसार "काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जान" सब संसार कुबड़े को बुरा समझता है पर लोग रथ में जिस जगह बैठते हैं उसके ऊपर कुबड़ी छत से ही छाया की जाती हैं फिर भी लोग उसके नीचे बैठते हैं, इसीलिए तो रहीम ने कहा है कि स्वार्थ बड़ी बुरी चीज है! स्वार्थ के कारण ही तो संसार में लोगों के अवगुण भी गुण समझ लिये जाते हैं। कूबर = कुबड़ा।

रथ कूबर = रथ में बैठने का स्थान, जिस पर कुबड़ी छत से छाया की जाती है।

२००—बापुरो = बिचारा, गरीब। जोग = योग्य।

२०२—गरब = गर्व। लेस = किंचिन्मात्र।

सेस (शेषनाग) = कुछ नहीं।

२०३—बड़े न बोलें बोल = बड़ी बात नहीं कहते हैं।

२०४—उवत = उदय होता। अथवत = अस्त होता।

२०६—दाग = धब्बा, छाप। सही = निशानी, दस्तखत दाग असवार = नम्बर की छाप घोड़े के लगती है पर वह छाप सवार की निशानी (पहिचान) का काम देती है अर्थात् उस नम्बर से प्रसिद्ध सवार होता है।

विशेष—घोड़-सवार सेना में यह नियम है कि सवार का नम्बर घोड़े

के ऊपर छाप दिया जाता है। यह प्रथा अकबर बादशाह के समय से चली है।

२०७—गज-ग्राह युद्ध में जब गज पर विपत्ति पड़ी थी तब भगवान विष्णु ने ही उसकी सहायता की थी, इसीसे रहीम ने कहा है कि बड़े सदैव दूसरों के दुख से द्रवार्द्र होकर सहायता करते हैं पहिचान हो, चाहे न हो।

२०८—प्रीति को पारि = स्नेह का द्वार अर्थात् स्नेह।

मूकन = मुक्का, घूँसा।

मुक्कों के डर से नींद दूर नहीं हो जाती बल्कि प्राणी मात्र को अपनी गोद में स्थान दे सान्त्वना प्रदान करती है। जड़ों का यही नियम है।

२०९—राहकरौंदा = एक करौंदे की किस्म होती है जो करौंदे से बड़ा होता है। करौंदा एक छोटा सा खट्टा फल होता है।

इतराइ = इतराना, अभिमान करना।

२१०—रहीम खजूर सरीखे बड़ा से घृणा करते हैं।

२११—दमामा = धौंसा, नगाड़ा।

२१२—पचवत आगि चकोर = चकोर का प्रेम चन्द्र पर है अतः वह उसकी ही ओर देखता रहता है यहाँ तक कि प्रेमावेश में आग को चंद्र अंश समझकर खा जाता है। एक अन्य कवि चकोर के आग खाने का कारण कुछ ओर ही बताता है।

प्रिय सो मिलो भभूत बनि, ससि सेखर के गात।
यहै विचारि अँगार को, चाहि चकोर चबात॥
'कोई कवि'

२१३—कदाचि = कदाचित्, शायद।

२१४—प्यादा = पैदल। फरजी = वजीर। शाह = बादशाह।
तासीर = स्वभाव, आदत, असर से।

नोट—प्यादा और फरजी शतरंज के मुहरे होते हैं। प्यादा सदैव सीधा चलता है और फरजी तिरछा सीधा सब तरफ चल सकता है। प्यादा थदरूर फरजी बन जाता है पर फरजी फरजी ही रहता है।

२१६—उत्पात = उपद्रव।

जो भृगु मारी लात = एक समय भृगुमुनि इस परीक्षा के लिये निकले कि देखे ब्रह्मा, विष्णु और महेश में कौन बड़ा है उस समय भृगुमुनि ने विष्णु की छाती में लात मारी पर भगवान ने बजाय क्रोध के शान्ति-पूर्वक मुनि का आदर किया।

२१७—रेख = निश्चित। मेख = खूँटी।

२२०—गुरुता = गौरव। फबइ = सोहती है। फबि आई है = सोहती आई है। अनत = दूसरी जगह। बतौरी = एक रोग जिसमें शरी में फोड़े की तरह मूल की गाँठे सी हो जाती हैं।

२२०—अगोट = भिन्नता (अ+गुट)
नरद = युग, जोड़ा।

नोट—चौपड़ के खेलनेवाले जानते हैं कि जब तक गोटों का जोड़ बँधा रहता है एक भी गोटी नहीं मारी जाती है जोड़ फूटने पर दोनों मारी जा सकती हैं।

एक कवि ने कहा भी है —"नरद के फूटे उठि जात बाजी चौपर की"।

२२२—बिथा (व्यथा) = दुख। गोय = छिपा।
अठिलैहैं = हँसी करेंगे।

२२३—तम और काजल का स्वरूप एक ही होता है।

२२४—अरज गरज = अनुनय विनय। रिनियाँ = ऋण लेनेवाला।

२२५—भाव = अच्छा लगे। कचपची = छोटे-छोटे तारागणों का समूह, कृतिका नक्षत्र।

२२६—नयो = नवना।

चीता = यह शिकार के समय नवता है।

चोर = इसका नवना नम्रतापूर्वक चापलूसी की बात करना है।

कमान = जब तक कमान न नवे, तीर नहीं चल सकता है।

अर्थात् इन तीनों का नवना हानिकारक ही है।

२२७—इतराइ = इतराना, ठसक दिखाना।

नोट—शतरंज के खिलाड़ी जानते हैं कि प्यादा फरजी बनकर फरजी ही की चाल चलने लगता है।

२२८—घरिया = रहँट में लगी हुई छोटी-छोटी डिलियाँ जिनमें पानी भर कर आता है।

रहँट = पानी निकालने का कल।

रहँट—पानी निकालने का एक प्रकार का कल (यन्त्र) होता है जिसकी गरारी पर होकर डिलियाँ आती जाती हैं। इसमें डिलियाँ मालाकार रूप में बँधी जाती हैं और रहँट की गिर्री पर रस्सी होती है। जैसे ही पेच घुमाया जाता है मालाकार डिलियाँ ऊपर नीचे आने जाने लगती हैं। जो डिलियाँ नीचे जाती हैं उनका मुँह पानी की ओर होता है और वे खाली होती हैं जैसे ही उनमें कुँए से पानी भर जाता है वे ऊपर को आने लगती हैं और उनकी पीठ पानी की ओर हो जाती है। गरारी पर आकर वे खाली हो जाती हैं और फिर उनका मुँह पानी की ओर हो जाता है। कवि ने ओछे मनुष्य पर इसी भाव को घटाया है।

२२९—गरीबी = दीनता, मिठास। नै चलै = नम्र बनकर चलै।

२३०—रगरि = रगड़कर, घिस कर। निठुर = कठोर हृदय जिसे दूसरे की पीड़ा का अनुभव न हो। खीस = दीनता।

२३१—नोखिना = स्त्री।

२३२—फीके = नीरस, बेमजा।

२३३—निरस = सूना।

२३५—बार = देर। छार = राख।

चोरी करि होरी रची = होली में लकडी ईंधन आदि लोग चुराकर रखते हैं।

२३६—कदली-सुवन = केले के पत्ते। सुडील = सुन्दर शरीरवाले। अपत = बिना पत्ते के।

नोट—केले के पत्ते पेडी मे चिपटे हुये निकलते हैं।

२३८—जग जीवन बड़े = ससार में अधिक जीवित रहने से।

अछत = जीते जी।

नोट—रहीम के पुत्रों की मृत्यु उनकी जीवितावस्था में ही हो गई थी। मालूम होता है इसी से रहीम ने दीर्घ जीवन को अच्छा नहीं बताया है।

२३९—सोय = सोता। सिखाय = शिक्षा देना।

२४०—पलटत लगै न बार = विरुद्ध होते देर नही लगती।

२४१—भिनुसार = सबेरा। सार = रजाई

२४३—माह मास लहि टेसुआ = माह में टेसू शोभा नहीं देते। इनका समय तो क्वार में है तभी इनका ब्याह कराया जाता है।

मीन थल पर जाने से मर जाता है। संसार में स्थान-भ्रष्टों की यही दशा होती है।

२४४—निगुन हुजूर = मूर्ख शिरोमणि।

कूर = क्रूर, कपटी, दुष्ट। विटप = वृक्ष।

२४६—सीम = मर्यादा, हद।

२४७—पछोर = फटकना, सूप मे फटक कर साफ करना।

हलुकन = (हलुक) हलके। गरुए = (गरू) भारी। बटोर = इकट्ठा करना।

२४८—टूटे = बिगाड होने पर। पोहिये = पिरोइये।

२४९—अधम वचन = कड़ुये बोल। फल्यो = फला-फूला, आनन्दित हो। नीरस = रस हीन।

२५०—बिमात = रस चलना

२५१—गुराइसि (गुर + आइसि) = बड़ों की आज्ञा, वृद्ध जनों की आज्ञा।

गाढ़ि = अत्यंत दृढ़।

२५२—रसकरी = फाजी। सेल्ह = साँग।

जगीरैं = इनाम में पाई हुई जागीर को।

२५३—बरी = बड़ियाँ, मूँग आदि की दाल बँटकर बनाई जाती है। छोन = नमक। मरैगो = पूरा होगा।

नोट—जगह-जगह भटकने की अपेक्षा कूए का आश्रय लेना ठीक है।

२५४—खैर = कुशल, भलाई। मद पान = शराब पीना।

२५५—बिमात = आफत, घबराहट।

२५६—गुन = गुण, रस्सी। गाढ़ि = बड़ा, गहरा।

नोट—कुए की गहराई को मन की गम्भीरता से उपमा दी गई है।

२६२—बियाधि = आपत्ति, दुख। बेरी = बेड़ी।

२६३—गाढ़े = कठिन।

२६४—थोथे बादर = वह बादल जो बरसाती नहीं होते, खाली। घहरात = गर्जते हैं।

२६५—जिन्होंने नट को तमाशा करते देखा है वे जानते हैं कि कड़ी के छोटे से घेरे में होकर जिस तरह मोटा ताजा करतबी नट शरीर को तोड़ कर साफ निकल जाता है इसी तरह रहीम जी कहते हैं ४८ मात्रा का जरा सा दोहा छन्द भी एक कुण्डली है जिसमें होकर बड़े से बड़ा अर्थ सही सलामत बिना उलझे निकल जाता है।

जो कवि बड़े मे बड़े गंभीर भावों को दोहे की छोटी कुडली सफाई के साथ निकाल सकते हैं वही करतबी नट की तरह श्रेय के भा होते हैं।

दोहा छन्द की प्र सा में कविवर रहीम की कैसी अच्छी उक्ति है हिन्दी के छन्दों में दोहा छन्द का वही स्थान है जो सस्कृत में 'अनुष्टु का और प्राकृत मे 'गाथा' का है।

२६६—रहीमजी कहते हैं कि दोहा और लाल यद्यपि छोटे होते परन्तु दोहे के रूप (शब्द योजनादि), कथा प्रसग और सुन्दर पदों प और लाल के रूप, कथा प्रसग (कैसा है, किस खान से निकला है किस-किसके पास रहा है आदि) तथा सुन्दर पहल पर जितनी ही दृ डालोगे उतनी ही छिपी हुई खूबियाँ नजर आवेगी और दोहा रत्न औ मणिरत्न का छिपा हुआ मूल्य भी आप की नजरों म बढ़ता जायगा।

कथानक = कथा प्रसंग। चार पद = सुन्दर पद, सुन्दर पहल किञ्चर = छोटा। अलुप = अलोप, छुपा हुआ।

नोट—नं० २६६, २६७ के दोहों से रहीम की दोहा प्रियता प्रक होती ह।

२६७—रहीम ने इस दोहे में तानसेन की प्रशसा और तान की खूबि किस युक्ति से वर्णन की है देखिये —रहीम कहते हैं कि ब्रह्मा ने इसी शेषनाग को कान नहीं दिये हैं क्योंकि वह जानते थे कि भविष्य म तान सेन पैदा होगे। कहीं उनकी तान सुनकर शेषनाग सिर न हिला दे नहा तो सारा ससार ही उलट जाय। तान वही है जिसे सुनकर चराचर मस्त हो सिर हिलाने लगें।

पाठक देखें, रहीम ने सीधे-सादे शब्दों में कैसा चमत्कार-पूर्ण भाव भर दिया है।

बरवै नायिका-भेद

दोहा नं० १—सुदयो न = नहीं जँचा, पसन्द न आया। चिरच्यो = चा, बनाया।

दो० २—बेधक = बेध करनेवाला, छेदनेवाला। अनियारे = अनीदार, नोकदार, नुकीले। इस दोहे में कवि ने बरवा छन्द की प्रशंसा की है।

बरवा नं० १—खोरि = दोष।

२—मोती किनारी की साड़ी पहिने, बाल खोले, सुन्दरी इधर उधर लोच के साथ घूमती फिरती, लहरों की तरह लहरा रही है। सुन्दरी के अंगयष्टि में मनोसुखकारी लहरों की सी बहार है। बिथुरे = फैले, छिटके।

३—नैन के कोवा = नैन कोर। अहटाय = बजना, शब्द होजना।

४—नवयौवना सुन्दरी के अंगयष्टि पर कामदेव के विजय चिन्ह प्रकट होने लगा है अथात् आँख में बाँकपन और पयोधरों में उभार आ गया है।

नवेलियहि = नवयौवना सुन्दरी। उकसन = उभरना, ऊँचे उठना।

५—धौं = न जाने। दुखि दुखि उठइ = रह रह के दर्द हो उठता है। लगि जनु जाय = मानो कुछ लग गया है, किसी प्रकार से चोट लग गई है।

६—औचक आइ = एकाएक आकर।

गोइयवाँ = सखियाँ, सहेलियाँ।

७—चूनि = चुनकर। चाव = रुचि, प्रेम। चुनरिया = साड़ी।

८—नवल वधू पति से मिलने तो आई है परन्तु आँखों को मिलाकर छाती से चिपका रखा है। उसे डर है कि कहीं वे उसके कुचों को छू न लें।

९—चाहन = चाहना, प्रेम करना। चाहति = चाहती है।

१०—प्राढ़ा नायिका रजनी के अंत में कोयल को बोलते सुनकर घबड़ा गई। उसे भय हो गया कि प्रियतम से यह वियोग करावेगी, क्योंकि

वे यह जानते ही कि सवेरा हो गया, उठकर चले जाँयगे। इस कारण घ
कहती है कि अरी सखी! इतना सवेरे से बोलकर मेरे ताप को दूने
बढ़ाना चाहती है—अरी! मुझ पर दया करके एक घड़ी तो आर चुपचाप
रह। "करन लागे खोटी हा परेरू लाल चोटी के" इत्यादि में भी इसी
भाव के उद्‌गार प्रकट किये गये हैं।

कोइलिया = कोयल। ताप = विरह-ताप। अलिया = सखी।

११—कृष्ण प्यारे की मुरली के भिन्न भिन्न रागों को सुनकर सुन्दरी प्रेम-मग्न हो रही है। मार्ग में खड़ी हुई न तो खड़े रहने का कष्ट अनुभव करती है और न आने जानेवालों के लिये मार्ग छोड़ने की उसे सुध है।

गनति न = नहीं समझती। खेद = दुख, कष्ट।

१४—चूनत = तोड़ते हुये। अँगियवा = अँगिया, चोली।

१५—सुगवा = तोता, सुग्गा। दुदार = चोट पहुँचानेवाली।

१६—नायिका पसीने पसीने हो रही है और उसके श्वास में भी कुछ वेग है। सामने से उसने अपनी सखी को आते देखा तो कारण छिपाने के लिये चट कहने लगी—मैं तेरे पास जल्दी जल्दी आ रही थी। देखो न पसीन-पसीने हो रही हूँ, साँस भी नहीं समाती! सखी मैं तो थक गई!

हरबर = जल्दी जल्दी। भा = हुआ। पथ-खेद = मार्ग का श्रम
उससवा = जल्दी जल्दी श्वास लेना, हाँफना।

१७—नायिका सखी से कहती है कि आज मैं कुसुम का फूल लेने के लिये खेत जाऊँगी। बहन, खेत बड़ी दूर है और दासी की छोरी जो मेरे साथ जायगी, बड़ी निकम्मी है। अत आज खूब थककर घर लौटूँगी। यह दिखाना चाहती है परन्तु असली कारण को छिपा कर।

कुसुमिआँ = कुसुम के फूल, इसमें काँटे होते हैं किसी जमाने

कुसुम रंग प्राप्त करने के लिये खेतों में बोया जाता था। कूर = निकम्मी, सुस्त। प्रयोग—सुभट शरीर नीर चारी भारी भारी तहाँ सूरन उछाह कूर कादर डरत हैं। 'तुलसी'

१८—पाथ = जल। अमरया = आम का बाग।

जैसो घन अमरैया = अमराई जाना आवश्यक है।

१९—तोरेसि = तोड़कर।

२०—बुताय = बुझा देना, गुल कर देना।

दियवा = दिया। बारन = जलाने।

२१—कोरवा = कोर।

२२—ठुमकत = गर्व के साथ पैर रखती हुई।

सुन्दरी मद-मस्त हाथी की तरह झूमती झामती इधर उधर नजर फेंकती मुसक्याती हुई जा रही है।

२३—नायिका ऊँची अट्टालिका से कामातुर हो दायें और बायें आँखों बिरहियों को देखती है।

२४—सास अपने पड़ोसी काहू से कह रही है कि मैं तो बड़ी दुखी हूँ क्योंकि मुझे नेवते जाना है, बहू अकेली घर की रखवाली के लिये है और मन घर सूना है। बहू का सूने घर में रहना ही उसकी इच्छा पूर्ति का द्योतक है।

२५—कोई पड़ोसिन नायिका से कह रही है कि ऐ दुलहिन! तेरी ननद नेवते और सास मैके गई है तो क्या हर्ज है? तेरी सुध लेनेवाला और प्यारा तो पास ही है।

खबरिया = सुध लेनेवाला। पिय = प्रिय, प्यारा।

२६—सूल = दुख। झरिगा = झर गया अर्थात् पत्रहीन हो गया।

२७—जैसे जैसे ग्रीष्म ऋतु का धधकता हुआ दावानल लता-कुञ्ज निर्मित कुटीर का दहन कर रहा था वैसे ही वैसे तरुणी के मर्म में इस

दहन को देख कर दुख बढ़ता था, क्योंकि दावानल लता-कुन्जों को जला-कर उसके संकेत-स्थानों को नष्ट कर रहा था।

दहत = जला रहा है। दवरिया = दावानल।

कुंज-कुटीर = लता निर्मित कुटियाँ।

२८—करि अनुराग = अनुराग कर, प्रेम कर।

२९—नायिका का ब्याह हो गया है। वह नई-नई ससुराल आई है इसीसे वह उदास बैठी रो रही है कि यहाँ प्रेमी से मिलना कैसे होगा। कोई चतुर पड़ोसिन इस रहस्य को समझकर सान्त्वना देती है कि "अरी! दुलहिन इस तरह रोकर प्राण न दे, तू अपना जी क्यों छोटा करती है? इस तेरी ससुराल में भी सघन कुंजों की कमी नहीं है। दूसरे तेरे घर में भी तो दूसरा कोई नहीं है।"

जनि = मत। करि मन ऊन = छोटा जी करना, उदास होना।

३०—प्यारे कृष्ण की वंशी की ध्वनि कान में पड़ते ही नायिका का मन पल्लवित हो उठा अर्थात् मिलने की इच्छा करने लगा। परन्तु सहेट से वह वापस हो चुकी थी, अब बारम्बार फिर-फिरकर उसी ओर देखती है और मन में पछताती है कि मैं क्यों इतनी जल्दी वापस आ गई।

सुमन = सुन्दर मन। सपात = पात-सहित अर्थात् पल्लवित होना, इच्छायुक्त होना।

३१—अराम = बाग। लहेउ न काम = प्रीतम-सुख लाभ न किया।

३२—अरसिया = शीशा।

३३—कजवा = काम के लिये। आएसि साधि = पूरा कर आई। जुरवना = जूड़ा। दिढ़ = दृढ़, मजबूत।

३४—जवकवा = महावर।

३५—पति प्रेम-गर्विता नायिका सखी से कह रही है कि आज तो मुझे बड़ी शरम उठानी पड़ी—दूसरी स्त्रियों के पैरों में तो नाइन के हाथ

का महावर था इससे किसी ने ध्यान नहीं दिया परन्तु मेरे नायिकाओं की दृष्टि मेरे पैरों से हटी ही नहीं।

३६—खीन = क्षीण, चंद्रमा घटता बढ़ता है।

मलिन = नीच, चंद्रमा कलंकी है।

बिष भैया = विष का भाई चंद्रमा और विष दोनों समुद्र से निकले हैं।

३७—रातुल = लाल। भयसि = हुआ। मुगठवा = मूँगा। निरम (नि + रम) = सुला। पखान = पत्थर। अधरवा = ओठ।

नोट—मानिनी का उदाहरण अप्राप्त है।

३८—टेसु = पलास, ढाक। सँदेसवा = सँदेसा, खबर।

३९—नायिका से दो सखियाँ अट्टालिका पर चलने के लिये आग्रह-पूर्वक अनुरोध कर रही हैं, परन्तु वह कहती है कि तुम दोनों क्यों इतना आग्रह करती हो। मुझे तो प्रियतम के बिना सूनी अट्टालिका में जाना न जाने क्यों अच्छा नहीं लगता।

४०—माता के घर में कोई बेलि लगी है जिसमें फूल खिल रहे हैं। पति उसका घर नहीं है, बेलि के पुष्पों को देखकर उसकी विरहाग्नि भड़कती है अतः नैराश्य से खिन्न होकर कहती है कि ऐ बेलि! तू जड़ सहित जलकर भस्म क्यों नहीं हो जाती। तेरे फूलों को देखकर मुझ विरहिनी के कलेजे में शूल उठती है।

सूल = पीड़ा।

सूचना—परकीया प्रोषित-पतिका और गणिका प्रोषित-पतिका के उदाहरण अप्राप्त हैं।

४१—सिख = शिक्षा। सीख = मानकर।

४२—निचवइ जोइ = नीचे को देखती है। छिति = भूमि।

खन = खोदती है।

सुसुकति रोइ = सिसक सिसक कर रोती हैं।

४३—खंडिता नायिका पति को ऊँघते हुए देखकर मीठी सी चुटकी लेती हुई कहती है कि प्रियतम! नींद के वश होने से आप की पगड़ी गिर गई! आप को नींद आ रही है अच्छा हो आप अरोठे में पलँग बिछाकर सो रहें।

पगरिया = पगड़ी। पवढ़ु = सो रहो।

४४—खंडिता नायिका पति के अपराधों को प्रकट न करती हुई उन्हें लज्जित करने के लिये पते की बातें कहती हैं —आप के ओठों में काजल और मस्तक में महावर लगा हुआ है सो जरा पोंछ डालिये और आप की छाती में यह माला के चिन्ह कहाँ से उपट रहे हैं।

बिन गुन माल = बिना डोरी की माला। जावक = महावर।

४५—नायिका ने पति को आते देख उठकर आँगन में ही स्वागत किया और साथ ही उस चतुरा ने आदर पूर्वक बैठने के लिये आसन दिया।

अँगनैया = आँगन। उठि कै लीन = आगे बढ़कर स्वागत किया। बैठक दीन = बैठने के लिये आसन दिया।

४६—नायिका ने पति को वापस आया देखकर कहा कि प्रियतम! पलँग पर लेट जाइये, मैं आप के पैर दबा दूँ जिससे रात में जागने के कारण जो नींद आप की आँखों में बस रही है वह दूर हो जावे।

मीजउँ = दबा दूँ। निंदिया = नींद।

४७—नायिका कहती है कि जिसके प्रेम में फँसकर मैंने अपने आत्मीय, स्नेही और अपना घर बार सभी छोड़ा, वह भी अपना न हुआ। यह बिल्कुल सच है कि अपना पति ही होता है।

पिअरवा = पति। साँच पगर = बिल्कुल सच।

४८—नायिका ने अपने प्रेमी के ओठ में काजल और मस्तक में

महावर देखकर मन ही मन कहा कि और हुआ सो हुआ परन्तु निगोड़ी ने मणियों की माला भी गले से निकाल ली है।

तकि = देखकर।

६९—सुन्दरी का अभी द्विरागमन होकर आया है अर्थात् अभी नई नई पति गृह में आई है और पति से मिलते ही मान कर बैठी है जिससे पति भी उदासीन हो गया है। परन्तु कुछ दिन पश्चात् जब नवोढा पर भी काम प्रभाव भरपूर पड़ा तो पछताने लगी कि मैंने क्यों मान किया, नाहक लड़ी।

गवनवाँ = द्विरागमन।

७०—सुन्दरी अपनी सखी से कहती है कि मैं बड़ी मूर्ख हूँ, मान करने में सारी रात बिताकर भोर कर दिया। सखी ने कहा सारी रात तो मान ही में बीत गई, तभी अब वह नहीं मनाते हैं इसमें उनका क्या दोष?

परलिउँ भोरि = सबेरा कर दिया। तेहिँ कछु खोरि = उनका क्या दोष?

७१—पति और पत्नी में कलह हो गया था। पति मनाते मनाते थक कर अंत में लौट गया पर मैंने मान न छोड़ा अब पछताने से क्या? उसी समय प्रीतम को छाती से लगाकर हृदय को ठंढा क्यों न किया।

मनुहरिआ = मनुहार। हिम कर हीव = हृदय को ठंढा करना।

७२—नायिका ने दूसरे से प्रेम करने के कारण ननँद और जिठानी से बैर भी बाँधा और उस प्रेमी से कलह भी कर लिया, अतः अब पश्चात्ताप करती है कि जिसके लिये ननँद और जिठानी से बैर कर लिया—हाय!—उस प्रीतम को कलेजे से क्यों न लगाये रक्खा!—मनोमालिन्य क्यों कर लिया।

बिरोधवा = बैर। करेजवा = कलेजे से।

७३—जिसने अनेक बार मुझे मणियों की मालायें दी होंगी, सखी!

मेरी मूर्खता तो देख, ऐसे प्रेमी से मैंने कलह कर लिया और अप्रसन्न हो बैठ रही। परिणाम यह हुआ कि वे भी रुष्ट होकर चले गये।

बहुबिरियाँ = बहुत बार।

५४—सहेटवा = संकेत-स्थान।

५५—केलि-भवनवाँ = क्रीड़ा-स्थल।

निकार = बेचैन। लै लै ऊँचि उससवा = लम्बी लम्बी साँसे ले लेकर

५६—पूर = बाढ़, तूफान, पूरा, बहुत।

५७—अभिसरवा = नायक अथवा नायिका का संकेत (पूर्वनिर्दिष्ट स्थान में गमन। बैरिनि = बैरियों के झुंड में।

५९—जुग = दो। जाम = पहर। जमिनिया = रात्रि। कउनि = किसे। धों = न जाने। बिलमाय = बिलमाया, रोक रक्खा।

६०—जोहति = जोहती, बाट देखती, रास्ता देखती।

बेचेउ = अपने को बेची। केहि = किस। हाट = बाजार।

६१—भा भिनुसार = सबेरा हो गया। इतबार = विश्वास।

६३—प्रेचारी नायिका एक तरफ तो प्रात काल तक इंतजार में बैठ कर नींद के थपेड़े खा रही है और दूसरी तरफ धनी प्रेमी का लोभ भी नहीं छोड़ सकती। अत खीझकर कहती है कि सबेरे की नींद मुझे सता रही है परन्तु इस मूर्ख, पर धनी प्रेमी का अब तक कहीं पता नहीं।

६४—हरुए = धीरे। दीठि बचाइ = निगाह बचाकर।

६५—चितवनि डग डाग = जरा से खटके मे चौंक पड़ती हैं और आँखे दरवाजे पर जा पहुँचती हैं।

६६—उतरत कतवार—पति के आने में देर है—अत बार बार पलँग पर से उतर कर देखती है और फिर जा बैठती है और सोचती हैं, क्या देर है।

६७—गुरलोगवा = गुरुजन, घर के बड़े बूढ़े। हाल = झट।

७०—कहल न जाम = कहा नहीं जाता है। रहत गढ़ात गोनवा = सुवर्ण भूषण बनवाते रहते हैं।

हिये सिरात = हृदय को शांति मिलती है, हृदय शांत रहता है।

७१—परनवा = प्राणों को।

७२—चकोरवा = चकोर, इस पक्षी का प्रेम चन्द्रमा पर है अत वह उसी की ओर देखता रहता है।

७४—नायिका मुग्धा है अत उसमें लज्जा अधिक है इसी से सब सखियाँ उसे प्रियतम के पास लिवाकर चलीं फिर भी मतवाले हाथी की तरह अकुश देकर अर्थात् जोरावरी गुदगुदा गुदगुदा कर उसे लिये जा रही हैं।

गुदगुदवा = गोदना, हाथी को, अंकुश देना, किसी कार्य के लिये बार बार जोर देना।

७५—लाल मढ़ुअवा = लाल वर्णों से सजी हुई। मढ़वाना का अर्थ सजाना या बनाना है।

७६—साहस गादि = दृढ़ हिम्मत वाली। पायेल = पैर में पहनने का आभूषण। डारेसि फादि = निकाल डाले।

८०—जरतरिया = जरीदार। बसन = वस्त्र।

८१—गान (गमन) = जाना।

८२—ओवरिया = कोठरी।

८३—फागुन फेलि = फागुन छोड़कर अर्थात् होली के त्योहार का तिरस्कार करके।

८४—नायिका का प्रेमी बड़े उत्साह से विदेश जाने के लिये तयार हुआ। बेचारी नायिका भी प्रियतम को जाते हुए देखने के लिये अन्य-मनस्का होकर उसी रास्ते चलने लगी जैसे पनिहारी मार्ग चलती जाती है पर ध्यान सिर के घड़े पर रखती है।

८५—सुमिरिनियाँ = माला।

८७—पौरि = ड्योढ़ी।

९०—जटित सुहीर = सुन्दर हीरों से जड़ा हुआ।

९१—चनन चउकिया = चन्दन की चौकी।

९२—चख (चक्षु) = आँखे।

९३—गुरु मनवा = गुरु मान, मान के दो भेद हैं (१) लघु (२) गुरु।

चारि = आव, चमक।

९४—परबिनवा = प्रवीन चतुर।

९६—छतिया = क्षत का अपभ्रंश।

९७—सधवा = साधा, इच्छा करता हुआ। रहिगा जीव = दिल रह गया अर्थात् दिल ने साथ न दिया।

९८—उच शब्द समवाय और मिश्रण अर्थ में आता है।

१००—जोरि नयन = आँखें मिलाकर।

१०२—बसी = मछली पकड़ने का काँटा।

३—बझाय = बिँधाना, फँसाना।

५—पलकिया = केश, घुँघराले बाल, जुल्फ।

१०३—ताको वोहि = उसको देखूँगी।

ऐठल गइ अभिमनिया = अभिमानिन ऐंठ कर चली गयी।

१०४—नायक बातों ही बातों में नायिका को निमंत्रण दे रहा है। वह कहता है आम के बाग में अनेकों कुंज हैं जिनकी छाँह बड़ी ही शीतल है वहाँ कितनी ही कोयले आ आ कर लड़ती हैं और फिर उड़ जाती हैं अर्थात् तेरे समान कोकिल-कंठी वहाँ अभिसार के लिये आती हैं।

१०५—यह जानकर कि पास ही वृषभान-नन्दिनी चोर नामक

खेल खेल रही हैं नन्दकिशोर भी तुरन्त वहाँ आ राधिकाजी को छू कहने लगे कि लो छिपो मैं चोर बनता हूँ अर्थात् राधिकाजी से एकान्त में मिलने की तरकीब निकाल ली।

१०७—नायिका स्वप्न में प्रियतम से मिल स्वप्न-सुख का आनन्द ले रही थी इतने में दासी ने आकर जगा दिया। बुरा हो उस दासी का। बेचारी नायिका का सुख ही नहीं छीना, वरन् विरहाग्नि को प्रज्वलित करके असीम दुख के गड्ढे में धकेल दिया।

सपनवाँ = स्वप्न में। आनि जगायेसि चेरिया = दासी ने आकर जगा दिया।

१०८—नायिका के पति का चित्र उसकी चित्रसारी में टँगा है उसे देखकर उसकी विरहाग्नि बढ़ती है। परन्तु क्या करे प्रियतम के आने के दिनों को माला की तरह बार-बार फेरती हुई अवधि को येनकेनप्रकारेण बिता रही है।

चितसरिया = चित्रसारी। औधिवसेरवा = अवधि के दिन।

१०९—नायिका विरह-संतप्त बैठी थी कि सखी ने बाहर से आकर कहा कि ऐ सखी तेरा प्रियतम परदेश से आ गया है। अरी! उठकर शृङ्गार क्यों नहीं करती?

११०—पति विरह-संतप्त नायिका और परदेश से आया हुआ पति, जब दोनों एक जगह एकत्र हुए तो स्त्री पति के मुख की ओर इस प्रकार तृषित नेत्रों से देखकर रह गई जिस प्रकार चकोर पक्षी चन्द्रमा की ओर इकटक देखता रहता है।

भे इकठोर = एकत्र हुये।

१११—हेरति   मुख मुसुकानि = शृंगार छटा को नायिका दर्पण में देखती है और मुसक्याती है।

सखी नायिका को सिखावन देती है कि दालान में बैठकर आनन्द

लूटो, प्रियतम के पैर दबाओ और प्रियतम को गरमी लगे तो पखा से हवा करो।

छाकहु बइठि दुअरिया = दालान में बैठ कर छको अर्थात् आनन्द लूटो। मींडहु पाय = पैर दबाओ। बिजन = बिजना।

११३—नायक और नायिका में किसी कारण कलह हो गया है। नायक ने भीतर का सोना छोड़ रक्खा है और बाहर सोता है, जिससे नायिका दुखी है। अतः सखी नायिका की ओर से उपालभ देती हुई कहती है कि यह क्या तमाशा कर रक्खा है? इस तरह झगड़े होते ही रहते हैं। चलो अन्दर सोओ। पति भी इस सम्वाद को सुनकर मुसक्याने लगा, पर कहा कुछ नहीं। चुपके से अपने लिये जो बिछौना बिछाया था उसे उठा लिया।

११४—सखी कामदेव के धनुष की तरह भौंह चढाये हुए हँसती है और उपस्थित रमणियो के कुच-स्पर्श करके उन्हें छाती से लगाती है। अर्थात् पति-आलिङ्गन का नाट्य करके नायिका को हँसाती है।

मदनाष्टक

(१) वहति मरुति मन्दम् = मन्द मन्द हवा चल रही थी। शशि-कर = चन्द्र-किरण। वागी = सवार। विगत = नष्ट मदन शिरसि भूय = कामदेव शिर पर सवार है अर्थात् पीडित कर रहा है।

(२) हर नयन-हुताश = शकर के तृतीय नेत्र की अग्नि। रति नयन-जलौघे = रति के नेत्रो के आँसू।

(३) हिम ऋतु = सर्दी का मौसिम

(४) मनसि = मन में। नितान्तम् = अधिक। अत्यन्त मनमथाङ्गी = कामोद्दीपित अगवाली।

१२—चनन = चन्दन । केवरिया = खिड़की । जोहौं बाट = प्रतीक्षा करती हूँ, मार्ग देखती हूँ ।

१३—चारो = चारा, उपाय ।

१४—या = साथ, से । चस्तुन = चक्षु, आँख ।

१५—कारी = पुर असर । कुल्फ़ें = कष्ट ।

१६—हस्त = हाथ ।

१७—श्रुति युग = दोनों कानों में ।

१८—तरल = चचल ।

१९—कमनैत = धनुष धारी । बाँकुरी = टेढ़ी । सार = प्रभाव, असर



सूची वर्णानुक्रम से



Printed by K. P. Dar at The Allahabad Law Journal Press Allahabad
Published by Hindi Sahitya Sammelan Allahabad